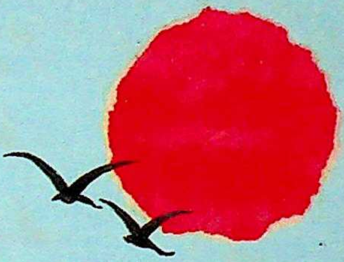

नवजागरण कालीन मणिपुरी कविताएं

सम्पादन—देवराज

अनुवाद—सिद्धनाथ प्रसाद

नवजागरण कालीन मणिपुरी कविताएँ

संस्करण : प्रथम, 1995 ई०

सर्वाधिकार : सम्पादक

मूल्य : पचास रुपये

प्रकशक : सुजाता प्रकाशन, 201, पुलिस स्ट्रीट, मेरठ-250001 ☎ 543938

लेजर टाइपसैटिंग– दिव्य ग्राफिक्स, पुलिस स्ट्रीट, मेरठ कैंट

मुद्रक : अतुल प्रिन्टर्स, पी० एल० शर्मा रोड, मेरठ

आवरण : सुशील कुमार राणा

भूमिका

नवजागरण कालीन मणिपुरी कविता मातृ भूमि-प्रेम-स्व-भाषा प्रेम, सामाजिक- जागरण, राजनैतिक-चेतना, सांस्कृतिक गौरव, वैष्णवी आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, सहज विकसित सौन्दर्य-दृष्टि, उदात्त मानवतावाद, रोमानियत से भरे प्रेम तथा आदर्श के साथ ही यथार्थ जीवन-बोध, अद्‌भुत लोक-चेतना, संघर्ष व कर्म की प्रेरणा और आधुनिकता के संस्पर्श जैसी उल्लेखनीय विशेषताओं से मण्डित है। प्राचीन और मध्य युग में जीवन तथा मानव-सभ्यता के विकास से सम्बन्धित अनेक विषयों पर विपुल मात्रा में लिखा गया था। संकट के दीर्घ काल में भी मणिपुरी भाषा में लेखन का नैरन्तर्य भंग नहीं हुआ था। इतने पर भी शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उसकी प्रकृति उस प्रकार की बहुत कम थी, जिससे नवजागरण कालीन कविता को कोई स्पष्ट साहित्यिक दृष्टि मिल सके। वस्तुतः वह ज्ञान का साहित्य अधिक था, ललित-कल्पना से सजा शुद्ध-साहित्य कम। साहित्य की दृष्टि से उसमें 'औग्री', 'खेन्चो' आदि रचना-शैलियों के प्रयोग विशेष रूप से किए गए थे तथा प्रतीकात्मकता व अन्योक्ति का माध्यम अपना कर इतिहास को रेखांकित किया गया था। एक प्रकार से वह मणिपुरी जाति के बौद्धिक-विकास, प्रकृति के साथ संघर्ष, सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थिति एवं विभिन्न विद्‌याओं के क्षेत्र में मणिपुरी पूर्वजों के गहन-चिन्तन को प्रस्तुत करने वाला साहित्य था। मध्यकालीन साहित्य में वैष्णवी-चेतना का अपना महत्व है। उसके प्रभाव से तत्कालीन रचनाओं में धर्म और अध्यात्म सम्बन्धी विशेषताओं का प्रवेश हुआ। स्मरणीय है कि वैष्णवी-चेतना मणिपुरी साहित्य में किंचित परिवर्तित हो गई और मणिपुरी वैष्णव-चेतना कहलाई।

प्राचीन और मध्य काल का गीति-साहित्य अवश्य ही साहित्यिक-मूल्यों की दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। अन्य समाजों की भाँति ही गीति परम्परा प्राचीन काल से ही यहाँ भी प्रारम्भ हो गई थी। विषय की दृष्टि से इनमें प्रकृति व देव-पूजा के साथ ही श्रम-परिहार, सामान्य मनोरंजन एवं स्वाभाविक विलास-इच्छाओं की अभिव्यक्ति की गई है। मुक्तक रचना शैली तथा गीति-तत्वों पर आधारित होने के कारण इन रचनाओं का काव्य-कला सम्बन्धी महत्व भी बहुत अधिक है।

मणिपुरी नवजागरण कालीन काव्य को प्राचीन साहित्यिक सम्पदा से जो प्रेरणा मिली वह कवियों के मन में सांस्कृतिक औदात्य व गर्व का भाव जगाने वाली थी। गीति परम्परा ने उन्हें स्वच्छन्दतावादी (रोमानी) कला-मूल्यों की ओर भी आकृष्ट किया; किन्तु नव-जागरण की जो अन्य विशेषताएँ थीं, वे उन्नीसवीं शताब्दी के राजनैतिक, सामाजिक व शैक्षिक सम्बन्धों का परिणाम थीं। तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव साम्राज्यवाद विरोध और सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण के रूप में प्रकट हुआ। नवजागरण-काल के कवियों ने अन्य विशेषताओं के साथ इस प्रभाव को अपने-अपने ढंग से काव्य का विषय बनाया। चिङाखम मयुरध्वज ने अपनी एकमात्र उपलब्ध काव्य-कृति (शैरेङ् अनौबा) में राष्ट्रीय-भावना, प्रकृति-प्रेम इतिहास-बोध सम्बन्धी मौलिक चिन्तन अभिव्यक्त किया। हिजम अङाङ्हल ने 'खम्ब-थोइबी शैरेङ्' जैसा लोक-महाकाव्य रच कर मणिपुरी भाषा को भारतीय ही नहीं बल्कि विश्व-भाषा समूह के मध्य गौरवान्वित किया।

उन्होंने मणिपुरी भाषा को लोक-चेतना और ग्राम्य-प्रकृति का कलात्मक सौन्दर्य भी प्रदान किया। ख्वाइराक्पम चाओबा ने मणिपुरी साहित्य को 'पी-थादोई' (खम्ब-थोइबी लोक प्रेमाख्यान के खलनायक 'नोङ्बान' की आत्मा की एक कीट के रूप में कल्पना) जैसा सक्षम प्रतीक देकर प्रेम-वियोग की अभिव्यक्ति-पद्धति को नया आयाम प्रदान किया। उन्होंने मणिपुरी की कल्पना पृथ्वी के कमल के रूप में करके मातृ-भूमि का अभिनव उदाहरण भी प्रस्तुत किया। हवाइबम नवद्वीप चन्द्र ने 'तोनुलाजिङ् लेम्बी' नामक लोकाख्यान पर आधारित गीतों की रचना के माध्यम से गीति-शैली को काव्यात्मक आदर्श से सज्जित किया। उन्होंने प्रसिद्ध बंगला कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के खण्ड-काव्य 'मेघनाद वध' तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीताजंलि' के चुने हुए गीतों का मणिपुरी भाषा में अनुवाद करके साहित्य की अभिनव सेवा की। नवजागरण-काल के सर्वाधिक लोक-प्रिय कवि कमल (लमाबम कमल सिंह) ने कल्पना, सौन्दर्य-बोध, निज-भाषा प्रेम, मातृ-भूमि प्रेम और मानवतावाद को अभिनव तथा चिरस्मरणीय रूप में चित्रित किया। कमल ने बड़े सटीक एवं प्रभावशाली रूप में मणिपुरी समाज में जागरण का संचार किया और लोगों को दासता की बेड़ियाँ तोड़ डालने की प्रेरणा दी। अशाङ्बम मीनकेतन सिंह ने भाषा-वैशिष्ट्य के साथ ही छन्दोबद्ध काव्य-रचना पर बल दिया उन्होंने आलोचना की भाषा का निर्माण भी किया और लोक जीवन में बिखरी काव्यानुकूल सम्पदा के आधार पर अनेक नए प्रतीकों का निर्माण किया। अराम्बम दरेन्द्रजीत ने पौराणिक चेतना व सांस्कृतिक जागरूकता पर विशेष बल दिया तथा राजकुमार शीतलजीत ने आध्यात्मिक भावादर्श को मुख्य रूप से कविता का विषय बनाया।

नवजागरण काल के कवियों की चेतना कविता के साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी प्रस्फुटित हुई। कमल ने अपने उपन्यास 'माधवी' से मणिपुरी उपन्यास लेखन की नींव का पहला पत्थर रखा। उन्होंने 'ब्रजेन्द्रगी लुहोङ्बा' नामक कहानी और 'देवयानी' नामक नाटक की रचना भी की। माधवी, भाषा-सौन्दर्य, कल्पना एवं लालित्य के साथ ही प्रेम, त्याग व आदर्श का भी मानक उपन्यास है। उनकी कहानी तत्कालीन सामाजिक परिवर्तन की उस लहर की सूचना देती है, जो विवाह व्यवस्था के अन्तर्गत युवक-युवतियों के मन में उठने वाली स्वनिर्णय (या कहें कि स्वयं निर्णय) की इच्छा को अभिव्यक्त करती थी। इसी प्रकार कमल ने अपने नाटक देवयानी में ब्राह्मणवादी व्यवस्था को चुनौती देने का प्रयास किया। हिजम अङाङ्हल का उपन्यास 'जहेरा' प्रेम के उच्चादर्श के साथ ही जातिवाद और धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध युवा-प्रतिक्रिया को दर्शाता है। इसमें महात्मा गाँधी के आदर्शों पर आधारित राष्ट्र-निर्माण तथा साम्प्रदायिक-समन्वय की भावना भी विद्यमान है। अङाङ्हल मणिपुरी रंग-आन्दोलन से जुड़े थे। वे अभिनेता और लेखक दोनों थे। उनके नाटक (इबेम्मा और पोक्तवी) सामाजिक यथार्थ से जुड़े हैं। 'इबेम्मा' तत्कालीन समाज में पढ़े-लिखे दिशाहीन युवकों के जीवन-व्यवहार तथा नारियों पर उसके प्रभाव को दर्शाता है। नायक बाहर पढ़ने जाता है, किन्तु वहाँ से बदमाश बन कर लौटता है। परिवार के लोग इस आशा में उसका विवाह कर देते हैं कि वह सुधर जाएगा, किन्तु वह सुधरने और अपनी पत्नी के प्रति समर्पित होने के वदले एक विधवा स्त्री के जाल में फँस जाता है। बाद में उसे पछताना पड़ता है। 'पोक्तबी' एक ऐसी सौतेली माँ को आधार बना कर लिखा गया है, जो एक व्यक्ति के बहकावे में आकर अपनी सौतेली पुत्री व दामाद का दाम्पत्य-जीवन नष्ट कर

देती है, यहाँ तक की अपनी पुत्री का अपहरण कराने से भी बाज नहीं आती। अन्ततः उसके सारे षड्यन्त्र खुल जाते हैं और पति-पत्नी का मिलन हो जाता है। अङाङ्हल के ये दोनों नाटक तत्कालीन मणिपुरी समाज की गम्भीर समस्याओं को उठा कर समाज सुधार की भूमिका बनाते हैं। मणिपुरी भाषा के नाट्यान्दोलन को गति देने के लिए महाकवि अङङ्हल ने 'चित्रांगदा नाट्य मन्दिर' की स्थापना भी की थी। चाओबा ने मणिपुरी भाषा के प्रथम ऐतिहासिक रोमांस प्रधान उपन्यास 'लवङ्लता' की रचना की थी जिसें उत्कृष्ट कोटि का रोमानी उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है। उस रचना के कला-सौष्ठव की आसानी से कल्पना की जा सकती है। चाओबा ने पर्याप्त मात्रा में निबन्धों की रचना भी की है। यद्यपि उनके निबन्धों पर बंगला निबन्धकार कालीप्रसन्न घोष का प्रभाव परिलक्षित होता है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि चाओबा ने मणिपुरी साहित्य को उत्कृष्ट निबन्ध-शैली प्रदान की। स्मरणीय है कि चाओबा ने पाठ्य-क्रम की आवश्यकता पूर्ति के लिए भी पर्याप्त मात्रा में सामग्री का निर्माण किया था। इससे उनकी शैक्षिक प्रतिबद्धता का अन्दाजा लगाया जा सकता है। अशाङ्बम मीनकेतन को मणिपुरी भाषा का वास्तविक गद्य-निर्माता कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने निबन्ध, नाटक, आलोचना, आत्म-कथा आदि अनेक विधाओं में रचनाएँ की हैं। इनमें आलोचना और आत्मकथा के क्षेत्र में मणिपुरी साहित्य उनका विशेष ऋणी है। अपनी गद्य-रचनाओं में उन्होंने बंगला, संस्कृत और अंगरेजी से प्राप्त ज्ञान को अपनी शैली में प्रस्तुत किया है। व्याकरण और अनुवाद के माध्यम से भी उन्होंने मणिपुरी समाज व साहित्य की सेवा की है। दरेन्द्रजीत ने अपने नाटकों (मोइराङ् थोइबी, भाग्यचन्द्र कौर व पराजय और नर गम्भीर) में विशिष्ट ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व सौन्दर्य दृष्टि का रूप प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं, उन्होंने 'एन अकाउण्ट ऑफ मणिपुरी आफ दि टाइम ऑफ महाराजा चूड़ाचांद सिंह' लिख कर तत्कालीन इतिहास को सुरक्षित रखने का प्रयास भी किया। इतिहास-लेखन का यह कार्य राजकुमार शीतलजीत ने 'नेताजी सुभाषचन्द्र बसु अमसुङ् आजाद हिन्द' की रचना करके जारी रखा। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में मणिपुरी समाज की समस्याओं को उठाया तथा आदर्शवादी समाधान भी प्रस्तुत किए।

नवजागरण कालीन लेखकों के गद्य साहित्य का सर्वेक्षण करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उस समय विभिन्न परिस्थितियों के परिणामस्वरूप जो राजनैतिक व सामाजिक चेतना विकसित हुई थी वह कविता में ही नहीं गद्य में भी समान रूप सै प्रवाहित हुई। यह अलग बात है कि कविता में उसका सांस्कृतिक व राष्ट्रीय-भावना सम्बन्धी पक्ष अधिक मुखर है, जबकि गद्य में सामाजिक पक्ष का आधिक्य है। यहाँ यह संकेत करना भी आवश्यक है कि कविता और गद्य की चेतना के विशिष्ट पक्ष एक दूसरे को बराबर प्रभावित भी करते रहे हैं, इसीलिए मणिपुरी भाषा की कविता का फलक परवर्ती काल में निरन्तर विस्तार पाता रहा। कवियों की सामाजिक प्रतिबद्धता ने भी उसे कभी सिमटने सिकुड़ने नहीं दिया। इस सर्वेक्षण का एक निष्कर्ष यह भी है कि नवजागरणकालीन साहित्य अपने युग का वास्तविक इतिहास ही प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि वह उसे पूरी सजगता के साथ संबोधित भी करता है। यदि हम कविता पर ही अपने को केन्द्रित करें तो कहा जा सकता है कि नवजागरण-काल की मणिपुरी कविता में सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य निर्माण की अकुलाहट विशेष रूप से विद्यमान है। वह पूरे समाज को झकझोर देना चाहती है। इसके साथ उसमें कलात्मक-मूल्य विकसित करने की आकांक्षा

भी है और यह संकल्प भी है कि इन सभी मूल्यों को समाज-निर्माण में वास्तविक भागीदार बनाने के लिए निज-भाषा की उन्नति आवश्यक है। ये कवि भारत की समस्त भाषाओं को एक भाषा-उपवन के पुष्पों के रूप में देखते हैं वहाँ ये पाते हैं कि तमिल, तेलुगु आदि भाषा-पुष्प खिल रहे हैं। दूर देश से आया नेपाली भाषा का पुष्प भी प्रफुल्लित हो रहा है, किन्तु मणिपुरी भाषा-पुष्प मुर्झाया हुआ है। कवि अपनी भाषा की इस दुर्दशा पर हृदय विदारक चीत्कार करते हैं और कामना करते हैं कि शीघ्र ही मणिपुरी भाषा उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ कर भारत के विश्व-विद्यालयों में फले-फूले। निज भाषा के प्रति यह लगाव एक प्रकार से जातीय-जीवन व जातीय-मूल्यों के प्रति प्रेम का प्रतीक है।

मणिपुरी भाषा की नवजागरण कालीन कविता की विशेषताओं पर बहुत विस्तार से विचार न करके हम एक दूसरा सन्दर्भ उठाना चाहते हैं। उसका सम्बन्ध तत्कालीन मणिपुरी काव्य में प्राप्त जीवन-चेतना और उसी कालावधि में अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में प्रवाहमान जीवन-चेतना के मध्य वर्तमान सम्बन्ध से है। इसके पीछे एक ठोस कारण है। यवनों के आक्रमण से लेकर अंग्रेजों के आक्रमण तक का एक सम्मिलित प्रभाव यह है कि भारतीय भाषाओं का एक-दूसरे से अपरिचय समाप्त नहीं हुआ। देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग भाषाएं फली-फूलीं। उन्होंने भाषा-वैज्ञानिक ही नहीं साहित्यिक क्षेत्र में भी उन्नति की। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओं की साहित्यिक-चेतना के अनेक तत्व समान धरातल पर विकसित हुए। उन्होंने सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति समान जागरूकता का परिचय दिया। इसका कारण यह था कि विदेशी आक्रमणों ने कमोवेंश देश के समस्त क्षेत्रों को प्रभावित किया। विशेषकर अंगरेजी नीतियों ने सम्पूर्ण देश को शोषण की चपेट में लिया, इसलिए सारे देश में ही राजनैतिक व सामाजिक जागरण आया और सभी क्षेत्रों में विरोध व क्रान्ति के स्वर फूटे। फलतः आधुनिक काल (यहाँ तात्पर्य उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी से है) में भारतीय भाषाओं का साहित्य जिस चेतना से जीवन्त बन सका वह भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न रूप वाली न होकर बहुत कुछ समान है। उसमें जो भिन्नता दिखाई भी देती है, वह सम्बद्ध भाषा-समाज की निजी सांस्कृतिक व कभी-कभी राजनैतिक स्थिति के कारण है। इसीलिए चेतना के विकास में एक अन्तर काल का भी रहा है। किसी भाषा में सामाजिक-राजनैतिक जागरण कुछ दशक पहले विकसित हो गया, जबकि कुछ में इसके विकास में थोड़ा विलम्ब हुआ, किन्तु यह न समझा जाए कि काल का यह अन्तर बहुत अधिक है। थोड़े-थोड़े अन्तर के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में नव जागरण कालीन चेतना फूटी। कुछेक भाषाओं के उदाहरण से यह बात सिद्ध हो जाएगी।

सन् 1850 ई० में असमीया भाषा के विशिष्ट व्यंग्य-कवि बलिनारायण बरा का जन्म हुआ, जिन्होंने 'असमीया बाबू' और 'ङाङरीया' जैसी रचनाओं में व्यंग्य के सहारे सामाजिक-जागरण लाने का प्रयास किया। उसी काल में कमलाकान्त भट्टाचार्य जैसे राष्ट्रीय-भावना प्रधान कवि का आविर्भाव हुआ। 'चिन्तानल' और 'चिन्ता-तरंगिनी' उनकी प्रसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, हेमचन्द्र गोस्वामी एवं चन्द्रकुमार आगरवाला ने असमीया साहित्य को नवजागरण के उच्च शिखर पर पहुँचाया। इनमें लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का महत्व उनके राष्ट्रवादी

दृष्टिकोण के कारण तथा गोस्वामी का महत्व नैसर्गिक सौन्दर्य की सफल अभिव्यक्ति व सॉनेट जैसी कलात्मक उपलब्धि से असमीया साहित्य को अलंकृत करने के कारण है। 1850 से लेकर 1930 के मध्य असमीया भाषा में सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण के विशिष्ट नाटकों की भी रचना हुई। 'कानियार कीर्तन' (हेमचन्द्र बरुआ), 'रामनवमी नाटक, (गुणाभिराम बरुआ), 'नोमाल' (वेणुधर राजखोवा), 'बेलिमार', 'चक्रध्वज सिंह' 'जयमति कुँवरी', (लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ) आदि इस कालावधि के श्रेष्ठ नाटक हैं। स्मरणीय है कि इस काल में शैक्सपीयर के 'कामेडी ऑफ एरर्स' का असमीया भाषा में 'भ्रमरंग' नाम से अनुवाद भी हो चुका था। इन नाटकों ने न केवल कला की दृष्टि से बल्कि भाव और विचार की दृष्टि से भी अपने युग को जागरण का उपहार दिया। 'अरुणोदय (1846) और 'जोनाकी' (1889) जैसे पत्र भी उस काल में नव-जागरण की पुष्ट आधार-भूमि तैयार कर रहे थे।

बंगला साहित्य में आधुनिक बोध के प्रवेश का श्रेय माइकेल मधुसूदन दत्त को है। उन्होंने सन् 1859 में 'तिलोत्तमा', और 1862 में 'वीरांगना' शीर्षक काव्य रचे। इनसे बंगला कविता में नया परिवर्तन संभव हुआ। सन् 1860 से 62 के मध्य उन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य 'मेघनादवध' का सृजन किया। अपने जन्म के कुछ काल बाद ही यह काव्य अनेक भारतीय भाषाओं का कण्ठहार बन गया। सन् 1875 में असमीया भाषा में इसकी शैली का अनुकरण करके रमाकान्त चौधरी ने 'अभिमन्यु वध' की रचना की। माइकेल मधुसूदन दत्त ने मेघनादवध के माध्यम से पौराणिक पात्रों को मानवी रूप से प्रस्तुत किया और काव्य में एक नवीन- बोध की शुरूआत की। बंगला में अमित्राक्षर छन्द के प्रयोग को इसी काल से प्रतिष्ठा मिली। उस काल को नव-जागरण प्रदान करने वाले कुछ अन्य कवि हैं—कृष्णचन्द्र मजुमदार, बिहारीलाल चक्रवर्ती, हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय, कामिनी राय, मानकुमारी, गिरीन्द्र मोहिनी आदि। आगे चल कर विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर में जिस चेतना का विस्फोट हुआ, उसकी भूमिका उनके पूर्ववर्ती कवि ही तैयार कर चुके थे।

बंगला साहित्य की सामाजिक सांस्कृतिक व राजनैतिक चेतना उपन्यासों व नाटकों के माध्यम से विशेष रूप से प्रकट हुई। सन् 1859 ई0 में माइकेल मधुसूदन दत्त ने जिस 'शर्मिष्ठा' नाटक की रचना की थी, उसमें एक गीत का इस प्रकार प्रयोग किया था—

मरि हाय कोथा सुखेर समय।
जे समय देशमय नाट्यरस
सविशेष छिल रसमय।
सोन गो भारत भूमि
कत निंद्रा जाबे तुमि।
आर निद्रा उचित ना हय।
उठ त्यज घूम घोर, हइला हइला भोर
दिनकर प्राचीते उदय।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के ठीक दो वर्ष पश्चात रचे हुए इस नाटक में राजनैतिक व साहित्यिक जागरण का जो उद्‌घोष है, वह आश्चर्यचकित कर देने वाला है। सन् 1860 में दीनबन्धु मित्र द्वारा रचित नाटक, 'नील-दर्पण' में तो अंग्रेजों पर खुला प्रहार किया गया था। इसमें नील

बनाने के कार्य से सम्बन्धित अंग्रेजी कर्मचारियों के अत्याचार सहित गोरे साहब द्वारा एक भारतीय लड़की पर बलात्कार के प्रयास का चित्रण किया गया था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में द्विजेन्द्रलाल राय ने 'पर पारे' जैसे सामाजिक जागरण के नाटक लिखे। बंगला उपन्यासों में भी बंकिम (दुर्गेश नन्दिनी-1865, आनन्द मठ-1875), प्रभात कुमार (नवीनसंन्यासी-1912), शरत (चरित्रहीन-1910, देवदास-1917) आदि ने सम्पूर्ण युग-जीवन को नवीन दृष्टिसे चित्रित किया। बंकिम ने आनन्दमठ में न केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्रबल भावना की अभिव्यक्ति की, बल्कि यह भी बताया कि बिना मूल्य-रक्षा के स्वतन्त्रता के लिए किया गया कोई भी संघर्ष सफल नहीं होगा।

नवजागरण काल में बंगला भाषा के प्रति जो चिन्ता उभरी वह सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती है। वैचित्र्य यह है कि यह भाषा-चेतना उन माइकेल मधुसूदन दत्त के माध्यम से आई, जो कभी अंग्रेजी के मोह में इंग्लैण्ड घूम आए थे और अपनी मातृ-भाषा को हेय दृष्टि से देखते थे। निज-भाषा का महत्व अंगीकार करके उन्होंने गुरुदास वासक को लिखे एक पत्र में लिखा– 'मातृ-भाषा को सीखने और समृद्ध करने से बढ़ कर कोई और बात नहीं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मिल्टन की वह नेक भावना कि 'वह अपनी मातृ-भाषा तथा निवास-भूमि के लिए कुछ कर सके', हममें से प्रत्येक मेधावी को अनुप्राणित कर सके। यदि हममें से कोई यह चाहता हो कि वह अपने पीछे अपना नाम छोड़ जाए, जंगली जाति की भाँति विस्मृति के गर्भ में ही विलीन न हो जाए, तो उसे मातृ-भाषा की लग्न लग जानी चाहिए। (डॉ. सत्येन्द्र द्वारा अनूदित)। इस पत्रांश से समझा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बंगला भाषा व साहित्य के उन्नयनकर्ताओं की भूमिका को कौन सी भावना प्रेरित कर रही थी।

तेलुगु भाषा का साहित्य उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना से आप्लावित हुआ। इसकी पहली संगठित अभिव्यक्ति 'काकिनाडा लिटरेरी एसोसिएशन' के माध्यम से हुई। यह संस्था राष्ट्रीय-भावना को व्यापक बनाने व शिक्षित लोगों में स्वाधीनता की चेतना जगाने के प्रमुख उद्देश्य से गठित की गई थी। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में तेलुगु कवियों ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी वाणी मुखर बनादी थी और शोषण का खुला विरोध प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1907 में एक सार्वजनिक सभा में चिलकमूर्ति लक्ष्मी नरसिंहम् ने अनायास कहा था–

भारत खण्डंबु चक्कनि पाडियानु
हिन्दुवुलु लेगदुडल येङ्चुचुंड
तेल्लवारनु गडुरसि गोल्लवारु
पितुकुमुतुन्नारु मूतलु विगिय गट्टि

अर्थात् भारत देश सुन्दर दुधारू गाय के समान है, तो वहाँ के निवासी निरीछ बछड़ों के समान रो रहे हैं। रोते हुए बछड़ों के मुँह बाँध कर, गोरे रूप ग्वाले दूध दुह कर ले जा रहे हैं। (प्रो. भीमसेन निर्मल द्वारा अनूदित)। इससे पहले पी. रामशास्त्री राष्ट्रीय-भावना के पद्यों की रचना कर चुके थे। उन पर चिलकमूर्ति का प्रभाव था। 'चिन्तामणि' और 'कृष्ण पत्रिका' के प्रकाशन से तेलुगु-कविता जागरण के मार्ग पर तीव्र गति से बढ़ी।

सामाजिक जागरण की दृष्टि से गुरजाड़ा अप्पाराव द्वारा सन् 1897 में रचित 'कन्या शुल्कमु' नाटक अपने कथ्य की नवीनता के कारण बहुत लोकप्रिय हुआ। इसमें स्त्री-जाति को

तिरस्कृत करने वाली अनेक कुरीतियों का पर्दाफाश किया गया है। आगे चल कर आचार्य आत्रेय, कोपेल्ल वेंकटरामाराव, लिनिशेट्टी सुब्बाराव आदि के नाटकों में आम जनता की समस्याओं के साथ ही समाज के सत्ताधीशों के व्यवहार पर कठोर प्रहार किए गए हैं।

तमिल साहित्य में राष्ट्रीय-जागरण का पूर्ण घोष सुब्रह्मण्य भारती की कविता में सुनाई पड़ा। यदि इतिहास पर ध्यान दें तो इस जागरण के सूत्र सन् 1806 की 'वैलूर सिपाही क्रान्ति' से जुड़े हुए हैं। यह दक्षिण में अंगरेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध पहला संगठित संघर्ष था और असफल होने पर भी इसने जन-मानस को प्रभावित किया। साहित्य में इस संघर्ष के प्रभाव की अनुगूंज तक सुनाई दी, जब भारती के जन्म-वर्ष, सन् 1882 ई0 में 'स्वदेश मित्रन' नामक साप्ताहिक पत्रिका शुरू हुई। आगे चल कर स्वयं सुब्रह्मण्य भारती ने 'इण्डिया' नाम की पत्रिका प्रकाशित की, जिसमें उनकी जागरण सम्बन्धी कविताएँ ही प्रकाशित नहीं हुई, बल्कि भारत की स्वतन्त्रता और राष्ट्र-भाषा के रूप में हिन्दी के सम्बन्ध में लेख भी प्रकाशित हुए। भारती ने पराधीनता के विरुद्ध कहा—

पुल्लडिमैत्तोषिल्   पेणि-पण्डु
पोइन   नाटकलुक्कु इनि मनम् नाणि
तोल्लै   इकषच्चिकल्   तीर   इन्द्र
तोण्डु   निलैमैयै   तूवेण्डु   तलिल

इन पंक्तियों में वे कहना चाहते हैं कि हम लोग इतने दिन तक पराधीन रूप में जीवित रहे, अब समय है कि पराधीनता का अनुभव करें और इससे मुक्ति का प्रयास करें। इसी प्रकार हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में भारती ने एक बार लिखा कि 'सम्पूर्ण भारत के लिए एक सामान्य भाषा आवश्यक है। यदि तमिलयन तमिल और हिन्दी जानते हैं, यदि आन्ध्र के लोग तेलुगु और हिन्दी जानते हैं, यदि बंगाली बंगला और हिन्दी जानते हैं, तो हम एक राष्ट्र के रूप में एक सामान्य भाषा पाते हैं, अर्थात हिन्दी।'

सम्पूर्ण दृष्टि से आत्म-बोध की यह भावना तत्कालीन तमिल साहित्य की अन्य विधाओं में भी प्राप्त है। विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रचे गए नाटकों में सामाजिक, ऐतिहासिक व पौराणिक बोध पर्याप्त मात्रा में है। ओट्ट नाटकम (गोविन्दकविराय) चोकि नाटकम (सुब्बाराव मुदलियार), कारालर कारकात्त नाटकम (कृष्णस्वामी चेट्टियार) जैसे सामाजिक समस्याप्रधान नाटक नवजागरण काल की उपलब्धियाँ हैं।

इन कुछेक भाषाओं के नवजागरणकालीन साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालने से ही यह सिद्ध हो जाता है कि उस काल में नवीनता के प्रति आग्रह, सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण, स्वाधीनता के साथ स्व-भाषा की चेतना व नव कला मूल्यों से मिलकर एक ऐसी वैचारिक-चेतना समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में बही, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप की जनता को अपूर्ण बोध से भर दिया। ऊपर केवल चार भाषाओं के उदाहरण दिए गए हैं। उनके भी काव्य और नाट्य संसार की ही संक्षिप्त पड़ताल की गई है, किन्तु यह दावा करना कठिन अथवा असंगत नहीं है कि तत्कालीन अन्य विद्याओं और भाषाओं में भी यह चेतनाधारा विद्यमान है। उस काल का साहित्य जनता की जिस मनोवृत्ति का सम्पूर्ण प्रतिबिम्बन करता है, उसकी मूल विशेषताएं

हैं—राजनैतिक पराधीनता से मुक्ति और वैचारिक क्रान्ति। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि इन दोनों विशेषताओं का विकास केवल पाश्चात्य-शिक्षा अथवा पश्चिमी सम्पर्क के कारण नहीं हुआ था, बल्कि इस परिवर्तन के बीज एक स्वाभाविक सामाजिक-विकास की जमीन में गहरे गड़े होने के कारण स्वतः स्फूर्त रूप में अधिक फले-फूले थे। यदि विचार-मंथन की सीमा का थोड़ा विस्तार किया जाए तो पता चलेगा कि मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन ने जनता को जो सामाजिक और राजनैतिक चेतना दी थी वह रीति-काल की तमाम सामन्ती प्रवृत्तियों के प्रभाव से भी दबी नहीं थी। यदि उस समय सामान्य जनता को संगठित करने वाली शक्तियों का विकास संभव हुआ होता तो भारत का सांस्कृतिक इतिहास कुछ दूसरा ही होता। पिछले वर्षों में रीतिकाल पर पुनर्विचार के परिणाम स्वरूप जो तथ्य सामने आए हैं, उनके अनुसार रीति काल का साहित्य कल्पना और श्रृंगार विलास का साहित्य भर नहीं है, बल्कि उसका बड़ा भाग राजनैतिक चेतना, यहाँ तक कि राष्ट्रवाद के संकेतों से भरा हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि भक्त और सन्त कवियों के प्रयास से जागरण की जिस धारा का जन्म हुआ था, वह रीति काल में विद्यमान थी। आधुनिक काल में यह साम्राज्यवाद विरोध और सांस्कृतिक जागरण की धारा के रूप में बदल गई। अंगरेजी-शिक्षा और अंगरेजी-राज ने अनजाने में उसके विस्तृत, व्यापक एवं बहु-आयामी होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, क्योंकि गोरे लोगों ने छोटे-छोटे भारतीय राजाओं को परास्त करके भारतीय उपमहाद्वीप को एक बड़ी राजनैतिक इकाई बनाया तथा अंग्रेजी को अनिवार्य करके विशाल स्तर पर संवाद की स्थिति उत्पन्न की। अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाल अमानवीय अत्याचारों ने जागरण की गति और भी तेज कर दी।

साहित्य के अध्ययन की परम्परागत परिपाटी में जागरण की इस परम्परा को महत्व नहीं दिया जाता। उसमें यह मान कर चला जाता है कि नवजागरण अंग्रेजी साम्राज्य, अंग्रेजी माध्यम की आधुनिक शिक्षा, पाश्चात्य सम्पर्क और वैज्ञानिक सुविधाओं के गर्भ से पैदा हुआ। आधुनिक युग और उसी चेतना को पिछले युगों से काट कर देखने की यह प्रणाली साम्राज्यवादियों के व्यापक हित में थी, क्योंकि इससे उन्हें उद्धारकर्ता का गौरव मिलता था और अपनी सत्ता को न्याय-संगत ठहराने का आधार भी मिलता था। आज भी उन्हीं साम्राज्यवादियों के पिछलग्गू पुरानी लीक से हटने को तैयार नहीं हैं। नवीन चेतना के विकास-सूत्र पीछे ले जाने में उन्हें असुविधा होती है, क्योंकि इससे नकल पर आधारित उनकी मौलिक विचारशीलता को क्षति पहुँचती है।

नवजागरण-काल में साहित्य में सामाजिक-क्रान्ति का जो स्वरूप है उसमें सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति, सामाजिक समानता की स्थापना तथा आलस्य और अशिक्षा जैसी सामाजिक बुराइयों से छुटकारे का स्वर प्रमुख है। राजनैतिक-मुक्ति की छटपटाहट इसके वाद आती है और उसके लिए भी सामाजिक आदर्शों की ही कसौटी तैयार की जाती है, इसी कारण भारत के स्वाधीनता संग्राम और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति के संग्राम के मध्य विभाजकरेखा नहीं है, बल्कि दोनों परस्पर पूरक हैं। विश्व के किसी अन्य देश का स्वाधीनता संग्राम ऐसा उदाहरण प्रस्तुत नहीं करता। सोचने का विषय यह है कि ऐसा अंग्रेजों के शिक्षा-दान से संभव हुआ अथवा इसका मूल-स्रोत कहीं गहरे अतीत में छिपा है ?

हमारी चिन्तना का विषय यह भी होना चाहिए कि नजवागरण और स्वाधीनता संघर्ष

के काल में भारत की समस्त भाषाओं में जो भाव और विचार की स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई, उसका हमारे राष्ट्रीय-चरित्र व राष्ट्रीय-संस्कृति के विकास में कितना योगदान है ? नव-जागरण के साहित्यिक अवदान पर अपने को केन्द्रित करके जो शुद्ध-साहित्यिक अध्ययन किए जाते हैं, उनमें कला-प्रवृत्तियों के विकास पर सर्वाधिक बल दिया जाता है और ऊपर जिन दो तत्वों का संकेत किया गया है, उनकी अनदेखी की जाती है। इस प्रकार राष्ट्रीय-संकट के काल में जिस चेतना ने पूरे देश की जनता को जोड़ने का कार्य किया, उसे खण्ड-खण्ड रूप में अखिल भारत की साधारण जनता के योगदान का मूल्यांकन भी नहीं होता। हमारी यह प्रवृत्ति भारतीय भाषाओं ही नहीं, बल्कि भारतीय लोगों के मध्य विद्यमान दूरियों के लिए भी काफी कुछ उत्तरदाई है।

मणिपुरी भाषा की नवजागरणकालीन कविता के मूल्यांकन के सन्दर्भ में अन्य भाषाओं के तत्कालीन साहित्य (विशेष रूप से काव्य) को भी दृष्टि-पथ में रखने की आवश्यकता पर इसी कारण बल दिया गया है। अब यह स्पष्ट है कि इस भाषा के काव्य में नव-जागरण भले ही कुछ विलम्ब से आया, किन्तु उसकी केन्द्रीय-चेतना और शेष भाषाओं के नवजागरण कालीन साहित्य की मूल-चेतना परस्पर भिन्न नहीं है। दोनों के अन्तः सूत्र आपस में गुँथे हुए हैं। इतने अधिक कि उन्हें अलग करना कठिन है। साहित्यिक-विकास की आगामी यात्रा में तो यह सम्बन्ध और भी पुष्ट हुआ है। अध्येताओं को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

❑❑❑

'नवजागरण कालीन मणिपुरी कविताएं' शीर्षक यह ग्रन्थ मणिपुरी कविता को हिन्दी-पाठकों के सामने प्रस्तुत करने वाली योजना की कड़ी है। इससे पहले 'आधुनिक मणिपुरी कविताएँ' शीर्षक संग्रह में मणिपुरी कविताएँ प्रस्तुत की गईं थीं। उस पुस्तक के प्रकाशन संस्थान से जुड़े साहित्यक सम्पादक के अतिरिक्त ज्ञान के कारण एक भारी गल्ती हो गई थी। मूल योजना के अनुसार मैं द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की मणिपुरी कविताओं का एक प्रतिनिधि संकलन प्रकाशित करना चाहता था, अतः मैंने द्वितीय विश्व युद्धधोत्तर मणिपुरी कविता' नाम देकर सामग्री प्रकाशन को भेज दी। कविताओं की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के लिए 'द्वितीय समरोत्तर मणिपुरी कविता : एक दृष्टि' शीर्षक एक लेख भी साथ भेजा। साहित्य सम्पादक महोदय ने इस लेख में कहीं यों ही आधुनिक मणिपुरी कविता शब्दावली का प्रयोग देखा और पुस्तक का शीर्षक बदल कर 'आधुनिक मणिपुरी कविताएँ कर दिया। सम्पादक महोदय ने यदि मेरा लेख भी ध्यान से पूरा पढ़ा होता तो उन्हें पता चलता कि मणिपुरी भाषा के काव्येतिहास में 'आधुनिक-कविता' से तात्पर्य है कविता का वह आन्दोलन जो हिन्दी के 'नई कविता' आन्दोलन की विशेषताओं से युक्त है और यदि उन्होंने थोड़ा और समझा होता तो उन्हें यह भी मालूम हो गया होता कि संकलित कवियों में एक कवि ऐसे भी हैं, जिनकी गणना द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल के कवियों में तो होती है, किन्तु मणिपुरी भाषा के आधुनिक-कवियों में हर्गिज नहीं। उन्हें नवजागरण कालीन काव्य-धारा का कवि माना जाता है। उक्त सम्पादक महोदय द्वारा मुझसे बिना पूछे नाम बदल दिए जाने से उन पर भले ही कोई प्रभाव न पड़ा हो, किन्तु मुझे कटु आलोचनाओं के प्रहार झेलने पड़े। यह स्वाभाविक भी था। यह एक प्रकार से किसी

भाषा के साहित्य के साथ अविवेकपूर्ण छेड़छाड़ थी, जिसे सुधी कवियों और समीक्षकों ने किसी प्रकार सहन तो किया किन्तु वे अपनी अप्रसन्नता का प्रकाश करने से नहीं चूके। मणिपुरी साहित्य-साधकों की सजगता से मुझे प्रसन्नता हुई और अपराध न होते हुए भी अपराधी के कटघरे में खड़े होने की विवशता के कारण दुख हुआ।

इस पूरे प्रसंग का उल्लेख इस कारण करना आवश्यक जान पड़ा, ताकि उस भूल को सुधारा जा सके, जो हिन्दी पाठकों के मन में मणिपुरी कविता के इतिहास का दोषपूर्ण चित्र बना सकती है। यह प्रसंग उठाना इसलिए भी जरूरी था कि 'आधुनिक मणिपुरी कविताएँ' के एक कवि अशाङ्बम मीनकेतन प्रस्तुत संग्रह में भी विद्यमान हैं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि पहले उनका चयन उनकी द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद की रचनाओं को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से किया गया था। जैसा कि उस संग्रह से जुड़ी कहानी से सिद्ध है कि साहित्य सम्पादक जी की स्वेच्छाचारिता के चलते पुस्तक का नाम बदल जाने से ऐसा आभास हुआ कि अशाङ्बम मीनकेतन आधुनिक-कवि हैं। वस्तुतः वे नवजागरण कालीन मणिपुरी कविता धारा के कवि हैं और इसी नाते उन्हें प्रस्तुत पुस्तक में स्थान दिया जा रहा है। मुझे आशा है कि इस स्पष्टीकरण से अकारण उत्पन्न भ्रम का निवारण हो सकेगा।

'नवजागरण कालीन मणिपुरी कविताएँ' का अनुवाद कार्य मणिपुर राज्य के वरिष्ठ हिन्दी सेवी श्री सिद्धनाथ प्रसाद द्वारा किया गया है। वे यद्यपि हिन्दी-भाषी परिवार से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु मणिपुरी भाषा के संस्कार उनमें बचपन से हैं, 'मणिपुर हिन्दी परिषद' के माध्यम से हिन्दी के साथ-साथ मणिपुरी भाषा के विकास के जितने प्रयास किए जाते हैं, उनमें सिद्धनाथ जी की अग्रणी भूमिका रहती है। उनका यह अनुवादकार्य भी भाषायी विकास के उनके संकल्प का ही सुपरिणाम हैं

कविता-प्रस्तुति के इस अभियान में अग्रज साहित्यकार डॉ. इबोहल सिंह काङ्जम का अविस्मरणीय सहयोग मिला है—इसके लिए मैं उनका ऋण स्वीकारता हूँ और उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

इस अवसर पर अभिन्न आत्मीय ऋषभेदव शर्मा, जगदीश 'सुधाकर', जसवीर राणा, सुधाकर 'संगीत', रामशव्द सिंह, कर्ण सिंह चौहान, कृष्णावतार 'करुण', राजकुमार 'राज', मुकेश 'सुमन', देंव 'भारती', सोज 'नजीवाबादी' चित्र महन्त, डॉ. एम. शेषन, महेश सांख्यधर, जयशंकर राम, हरि शंकर जोशी, ऋचा जोशी और हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार जवाहर सिंह का स्मरण इसलिए स्वाभाविक है कि इनमें से कुछ राष्ट्र-भाषा के लिए किए जाने वाले संघर्ष में सीधे शामिल हैं और कुछ दूर रह कर अपनी भूमिका निभा रहे हैं। मैं भी इन्हीं लोगों के साथ चलने का प्रयास कर रहा हूँ। इस पुस्तक के प्रकाशन से इन्हें निश्चय ही सुखानुभूति होगी।

इम्फाल :
26 जनवरी 1995 **—देवराज**

अनुक्रम

चिङखम मयुरध्वज सिंह 19

जन्म भूमि 20

काल की शक्ति 22

ईशान 24

पवन 25

बहुत सवेरे 28

तारे 30

पुष्प 32

हिजम अङाङ्हल सिंह 35

विश्वास 36

विचार 37

यश की खोज 38

ऋण 40

भाई-बहन 43

ख्वाइराकूपम चाओबा सिंह 47

पी-थादोइ 48

वन-पाखी के प्रति 53

बजती नहीं वीणा 55

मनुष्य 56

मैतै कवि 58

लोकूताक के किनारे 62

कमल को देखकर 65

हवाईबम नवद्वीपचन्द्र सिंह 69

एकाकी जीवन नैया 70

नव-वर्ष 71

ध्वनि 72

क्या सन्देश है कहो बसन्त के अंकुर 73

अजानी सूरत अनसुना नाम 74

काम पर चलो 75

असमाप्त चिन्तन 76

लमाबम डॉ. कमल सिंह 77

मैतै कोकिल 78

मैतै चनु 82

चन्द्र नदी 85

विश्व-प्रेम 87

मातृ-तर्पण 88

प्राचीन मैतै साहित्य 92

आज का मैतै साहित्य 95

अशाङ्बम मीनकेतन सिंह 97

स्वामी से 98

संसार-मृग 99

जागरण गीत 100

स्वर्ग से उतर आओ 101

प्रिये थादोई 104

कमल से 106

अराम्बम दरेन्द्रजीत सिंह 109

कंस की राज-सभा 110

मातृ-भूमि 113

स्मृति 115

तू है कहाँ 116

आह्वान 118

राजकुमार शीतलजीत सिंह 119

लीला 120

भय मत करो 121

प्रेम-दान 122

राधा-मन-हरण 123

युद्ध के पूर्वाह्न में 124

परिशिष्ट 129

नवजागरण कालीन मणिपुरी कविता : एक दृष्टि 128

कवि परिचय 157

आभार

साहित्य, संस्कृति एवं भाषा
के विकास हेतु
समर्पित
श्री नरेशचन्द्र अग्रवाल
के प्रति

नवजागरण कालीन
मणिपुरी कविताएँ

चिङाखम मयुरध्वज सिंह

जन्म भूमि

सौन्दर्यमयी युवती के
कण्ठ के आभूषण
स्वर्ण-हार के मध्य,
जैसे मणि सा एक मात्र
है सुन्दर प्रान्त
इस भूतल पर।

प्रकृति का क्रीड़ा स्थल,
लावण्य का स्रोत,
सौन्दर्य-संगम
आनन्द की जलस्थली
पुकारा जाने वाला प्रान्त यह
नहीं अन्य कहीं धरा पर।

कोई दूसरा विशाल देश
सौन्दर्य का है संगम जहाँ
सुशोभित महल-दुमहलों से
धन-धान्य से परिपूर्ण,
रहने पर भी उस सुन्दर देश में
प्रान्त है यह न दूर होने वाला स्मृति से।

कोई बड़ा राजा,
यदि डाले दृष्टि इस पर,
तो आक्रमण के समय,
सोच कर, नहीं करनी है रक्षा
ले हल्के-फुल्के ढंग से जो
नहीं निकलेगा ऐसा कोई कायर।

त्याग कर घर की चिन्ता
निश्चय करके इसी के हेतु
पहुँचकर रण-भूमि के मध्य
करते हुए शत्रु का सामना
त्यागने में प्राण युद्ध में
नहीं होगी हिचकिचाहट।

दो नहीं हैं पृथ्वी पर
प्रान्त है एकमात्र यह
विस्तृत महत्ता को इसकी
नहीं गा सकेगा कोई
उदात्त है स्वर्ग से भी,
कहते हैं सभी लोग।

होने पर इतना गुण-गान
खोजने पर, है कौन सा प्रान्त,
किसी से भी पूछने पर
बता देगा वह तुरन्त
मनुष्य के लिए पूजनीय
जन्म भूमि है यही।

काल की शक्ति

सन्ध्या के समय,
सूरज के पहुँचने पर पर्वत के निकट,
पहाड़ की चोटी पर किरणों के बिखरने पर,
छा जाने पर लालिमा घाटी में,
सुन्दर दिखता है मणिपुर।

किसी एक दिन,
इसी काल,
चींङ पहाड़ के शिखर पर,
चढ़ गया अकेले ही,
देखने माँ का मुख-मण्डल।

देखने पर पश्चिम की ओर,
नम्बुल नदी में,
पानी के बहने से धीरे-धीरे,
उभरी ध्वनि को सुनने से,
मन स्नेहान्दोलित हो गया।

प्यारी हो कितनी, हे नदी,
मातृ-भक्त हो तुम,
कुन्ती विलाप के समय,
तुम भी थीं रुदन में भागीदार,
नहीं हुई शान्त अभी तक।
देखते हुए दक्षिण की ओर,
देख राजमहल लङ्थबाल[1] का,
राजा गम्भीर सिंह से,
कहते हुए बातें "नर"[2] द्वारा,

आता है यादइ आँसुओं का गिराना।

देखते समय पूर्व की ओर,
नोङ्‌माइजिङ् पर्वत को देखने से,
गौड़ीय-धर्म के पूर्व,
शिव की उपासना के काल में,
स्मरण आता है स्थापित चिह्न।

देखने पर उत्तर की ओर,
पुराने राजमहल के दिखाई देने पर,
काल में चींथङ्‌खोम्बा[3] के,
चन्द्रकीर्ति[4] के समय,
याद आते हैं किये गए कार्य।

अपूर्ण ही रहा दिशाओं का दर्शन,
बहुत समय बीत जाने के कारण,
उतरते समय धीरे-धीरे,
थोड़ी प्रज्ञा जाग्रत होने पर,
उभरा यह विचार।

काल-धारा के प्रवाह के समक्ष,
शक्तिशाली भँवर के तीव्र वेग में
सामर्थ्यवानों के मुकाबले
नहीं टिक पाता कोई भी,
रह जाती है सिर्फ स्मृति।

---

१. एक ऐतिहासिक स्थान का नाम।

२. मणिपुर का ऐतिहासिक वीर पुरुष नर सिंह।

३. मणिपुर के प्रसिद्ध राजा भाग्यचन्द्र का दूसरा नाम

४. मणिपुर का एक राजा।

ईशान

लाल वस्त्रों से अलंकृत, हे ईशान कोण की देवी,
किसने बनाया तुम्हें?
देखें कहीं भी, नहीं हटती दृष्टि,
तुम हो प्रदान करती आँखों को तोष।
सौन्दर्य भरे ललाट पर, केशों के बीच माँग में,
लाल सिन्दूर सजाने वाली।
मन्द-मन्द मुस्करा कर, हर्षोल्लास से रोमांचित-मन,
गाने वाली मधुर गीत
लेकर अंजलि-भर पुष्प, किसके चरणों पर,
चढ़ाती हो नत भाव से,
झुका कर दृष्टि, देख किसकी ओर,
छलका रही हो प्रेम-जल की धारा?
सारा संसार, था मृत-सा,
जाग गयी सम्पूर्ण-स्मृति,
ईश्वर के सारे उपासकों को करा कर स्मरण मन में,
जपवाया ईश्वर का नाम।

पवन

न दिखाई देने वाले तुम,
अस्थिर तुम,
यत्र-तत्र,
हर जगह पहुँचने वाले,
इस पृथ्वी पर,
जीवों के हो प्राण।

प्राचीन काल में,
मान देवता के रूप में,
पूजा गया था तुम्हें,
ज्ञानी जनों के,
गहराई पूर्ण विचार के कारण,
छोड़ दिया अब तो।

कहने दो, देवता नहीं हो,
रखने दो, तरह-तरह के नाम,
कहने दो, चाहे जो,
समझने दो जो समझना है,
क्या खो जायेगा गुण तुम्हारा,
क्या कुछ घट जायेगा तुम्हारा।

न बदल कर प्रकृत रूप को,
न त्याग कर स्वभाव,
बिना बाधा-अवरोध के,
स्वतन्त्र रूप से
जहाँ बहना चाहते हो, बहते हो,

जिस ओर चाहते हो बहना, बहते हो।
शक्तिशाली या शक्तिहीन होना है तुम्हारी इच्छा पर,
बन जाते हो यदि निर्बल,
नव कोमल लता के,
नव अंकुर की,
कोमल फुनगी को भी
नहीं हिला सकते।

यदि बन जाते हो शक्तिशाली,
बड़े वृक्षों को उखाड़ कर,
अट्टालिकाओं को गिरा कर,
द्वीप के चतुर्दिक जल को उछाल,
कँपा पृथ्वी को थर-थर,
झकोरे लेकर बहते हो सब कहीं।

तुम्हारी इच्छा पर है सर्दी-गर्मी,
चाहते हो यदि सर्दी,
बन जाते हो हिम-जल,
पोम्फ्रि[1] ही हाक्थङ्[2] भी है जिनके लिए
फटे-पुराने कपड़ों में करवट बदलने वाले,
अनेक निर्धन, दुख भोगते हैं अपार।

यदि चाहते हो गर्मी
बन जाते हो आग से,
जो कोई भी पड़ता है सामने,
नहीं कर सकता तुम्हें सहन,
सोच कर, नहीं पड़ना है सामने,
छिप जाते हैं इधर-उधर जीव।

तुम्हारे अवतरित रूपों का भेद,
ये सारे गुण तुम्हारे,

नहीं समझ सकता कोई,
ऐसा होने पर भी,
हे शक्तिशाली पवन,
मैं सोचता हूँ मन-ही-मन,
उसके नियम के अनुसार,
चलने वाला संसार,
निकलने वाले सूर्य-चन्द्र,
शीत-ऊष्ण का भेद,
और, पवन नाम वाले तुम भी,
हो उसी के आदेश-पालक।

---

१. फटे पुराने कपड़े जोड़ कर बनाई गई रजाई।

२. मणिपुर में यह चलन है कि सोते समय रजाई या कम्बल के नीचे एक मुलायम चादर लगा कर ओढ़ा जाता है। इसी चादर को हाक्थङ् कहते हैं।

बहुत सवेरे

बुझ गया शजिक्-थबा[1], मिट गया ईशान का अंधियारा,
फैल गई सूर्य की किरणें।
पक्ष विपक्ष न मानने वाली, अंतर न करने वाली छोटे-बड़े में
वापिस चली गयी निद्रा देवी भी।
रात्रि-काल बीत गया, जाग गया संसार,
मच गया शोर सब ओर।
शीघ्र विकसनशील पुष्पों ने, खोल कर पंखुरियाँ पूरी,
प्रदर्शित किया सुन्दर स्वरूप।
पाकर सुमन-सुरभि, विचलित मन से,
उड़ गया भ्रमर समूह।
झील में उपजे पंकज, देख सूर्य किरण,
मुस्काने लगे मन्द-मन्द।
कुमुदिनी नामक पुष्प, झुकाए है सिर को,
लग गया उसे विरह-धुआँ।
मधु-लोभी भ्रमर, बैठ पुष्प पर,
करने लगा रस पान जी-भर
कमल नामक पुष्प ने, फैला हृदय-पंखुरी
बिछा दिया भौंरों को आसन।
प्रेमी भँवरा, घुस पंखुरियों के बीच,
बैठ गया पराग-पटल पर।
भौंरों का झुण्ड पान कर कमल-पराग,
भूल गया कुमुदिनी की बात।
दिखने पर कुमुदिनी का रूप, देख सुमन-स्वरूप
उड़ने लगे इधर-उधर।
अच्छे समय में फहराती ध्वजा जब,
थे अनेक मित्र।

आने पर बुरा समय झुक गई जब ध्वजा,
देखने पर भी दिखता नहीं कोई।
कुल-खानदान में, बन्धु-बान्धवों के बीच,
कौन है कह सकें जिसे अपना?
इस संसार में, मित्रों के बीच,
कहाँ है सच्चा मित्र?
शक्ति-भर खोजकर शक्ति भर सोच कर,
कोई नहीं ईश्वर के सिवा।
बिना भेद किये काल का, विभक्त किए बिना मन को,
करो स्मरण स्वामी का।

---

१. एक तारा जो सुबह पूर्व में निकलता है तो शजिक् कहलाता है और वही जब गोधूलि में पश्चिम दिशा में निकलता है तो उसे "थबा" कहा जाता है।

तारे

आकाश में निकलनेवाले तारे,
कौन हो तुम लोग, निकलते हो सिर्फ रात को।
शान्त-शीतल किरणों से मन-मोहित करने वाले,
कुबेर की तिजोरी की मणि हो तुम लोग।

नहीं तो साँवली रात के
जूड़े के फूल हो?
या आकाश के देवलोक में
दीप हो रात को जलाये जाने वाले?

वहाँ ऊपर, बादल का प्रिय
एक बड़ा स्वर्ण-मोर है क्या?
अन्धेरी रात को समझ लेने पर बादल,
फैलानेवाली पूँछ की आँखें हो क्या?

या स्वर्ग की देवियों को
अत्यधिक प्रिय लगने वाले,
स्वर्ग के नन्दन-कानन में खिलनेवाले,
पारिजात नामक फूल हो क्या?

वह भी नहीं तो, वहाँ ऊपर
एक बड़ा-सा तालाब है क्या?
सूरज के डूबने पर खिलने वाली,
उस तालाब की कुमुदनियाँ हो क्या?

या किसी धार्मिक की आत्मा हो?
कर्म के फलस्वरूप देवलोक में रह,
अन्धेरी रात के आकाश में निकल,
धर्म के व्यापक गुण दर्शा रहे हो क्या?

बुद्धिजीवी और ज्ञानी अनेक
मानते हैं ग्रह-उपग्रह ही,
देते हैं अनेक-अनेक नाम तुम्हें,
कहते हैं चाँद की प्रियतमा भी।

नहीं चाहता खोजना भी इन सब कारणों को,
नहीं चाहता पूछना भी ज्ञानियों से,
नहीं चाहता दिखाना भी कि हूँ अधिक समझदार,
चाहता हूँ कहना मैं भी अपनी बात।

विशाल आकाश के फलक पर
किसी के बड़े गुण गिनाकर
हैं लिखित मुक्ता वाले अक्षर सुन्दर
चाहत है मेरी ऐसा कहने की।

खिले पुष्प दर्शाते हैं मुस्कान,
पूर्णिमा का चन्द्र सूचित करता है शीतलता,
सूर्य प्रतीत कराता है प्रकाश-पुंज,
ये व्यंजित करते हैं उस प्रभु के गुण।

पुष्प

इस वृत्ताकार धरती की सतह पर
ईश्वर की कला-सृष्टि में,
सुन्दरताओं के मध्य,
सौन्दर्य के बीच,
अकेले चमकने वाले हे पुष्प!

किस सौन्दर्य का बनाऊँ उपमान,
लावण्य का अंकन करूँ कैसे,
कैसे प्रशंसा करूँ तुम्हारी,
कैसे वर्णन करूँ तुम्हारे रूप का,
कल्पना की पहुँच से है बाहर।

मणि के साथ तुलना करने को,
नहीं मानता है मन,
तुम्हें समझकर श्रेष्ठ,
प्रविष्ट होकर पृथ्वी के भीतर,
छिप रहा है मणि।

सुगुम्फित किए जाकर माला में,
बनाए जाकर पुष्प-गुच्छ,
पहने जाते हो गले में,
लगाये जाते हो जूड़े में,
सुन्दर नारी के।

निर्मित कर सोने से तुम्हारी आकृति,
खचित कर मणियों से,

नितान्त मध्य जड़कर हीरा,
पहनती हैं सँवार कर,
सुन्दर नारी।
हर-एक ग्रन्थ में,
अर्घ्य की तैयारी में
वेद-पुराणों में,
छोड़ नहीं सकते तुम्हें,
मुनि-ऋषिगण।

चन्दन का कर छिड़काव,
सजा कर अच्छी तरह आकृति,
भक्त-जन,
श्रद्धापूर्वक चढ़ाते हैं,
देवता के चरणों में।

निर्मित कर सुन्दर तुम्हारी आकृति,
दर्शा कर तुम्हारा लावण्य भरा रूप
भरकर सुगन्धित सुरभि,
तुम्हें बनाने वाला स्वामी,
गर्व कर रहा है संसार में।

ऐसा होने पर भी,
होता है मन में अफसोस,
तुम्हें शीघ्र बिखर जाने वाला,
तथा अल्पायु,
सोचता हूँ जब मैं।
अभी-अभी खिलना,
तुरन्त मुरझा जाना,
देख तुम्हारे इस रूप को,
और इस विषय में सोचने पर,
तय पाया मन में।

इस संसार में,
ज्ञात नहीं स्थिर स्थान,
अचल नहीं है स्थिति,
उगता नहीं अमर वृक्ष,
दिखाया यही तुमने।

रूप को भी सुन्दरता के,
शक्ति को भी बलवानों की,
संपद को भी बड़ों की,
अभिमान को भी अमीरों के
नष्ट होना है अवश्य।

जैसे तुम कोमल विकसित,
जैसे तड़ित मनोहर,
अज्ञात में विलुप्त,
खोजे नहीं जा सकते चरण चिह्न,
वैसे ही मिट जाना है अविलम्ब।

आश्चर्यों के स्रोत-स्थल,
मोह के जन्म-स्थानं
इस संसार में,
माया के रूप को समझना,
बहुत ही कठिन हैं पुष्प।

मात्र क्षण के लिए सोच,
डूब कर आनन्द में,
असत्य को सामने रख,
सत्य को रख पीछे,
चल रहा है संसार।

हिजम अङाङ्हल सिंह

विश्वास

करता हूँ प्रेम देशवासियों से, करता हूँ विश्वास आस-पड़ोसवालों पर।
करता हूँ विश्वास मानकर आत्मवत संगी-साथियों पर।
भुला नहीं पाता गंध संग-साथ खिले फूलों की।
बिसरा नहीं पाता ऋण बहन, बुआ, माँ, दादी के दूध का।
है शिरोधार्य आज्ञा सदा भाई, पिता, काका की।
कर नहीं सकता विश्वास मन से पराये लोगों का
कैसे विश्वास करूँ अपना मान उस अजनबी को।
सजातीय मान लूँ कैसे तुम्हें शत्रु
नहीं रहना चाहता जीवित पड़ अनजान के हाथों में।
नहीं सौंपना चाहता गठरी विश्वास की
परायों के हाथों में।

विचार

पक्षी अधिकांश बिताने वाले रात वृक्षों पर,
झगड़ते हैं बिना बहुत सारे कारणों के परस्पर,
व्यतीत करते रात क्यों करके वाद-विवाद आपस में,
इतनी सी है रात, नहीं अधिक देर की
छाते ही प्रकाश सूर्य का शोरा[1] पर
उड़ जायेंगे सभी दसों-दिशाओं में
करो विचार शुभाशुभ का सुखद बनाने इस रात्रि को।
बढ़ाओ मित्रता कल की भलाई हेतु।
निर्बल पक्षी बचने का करो प्रयास हाथों से पक्षी के।
मुँह में रखो दबा कर फल सुबह-शाम के लिए।

१. एक पहाड़ का नाम

यश की खोज

हे यश के नाम से ख्यात तुम्हारा निवास है कहाँ
खर्च कर पैसा पाऊँ तुम्हें कैसे।
यश तुम शाही बाजार में बिकते हो।
यश निवास करते हो तुम अभाव शून्य भांडार में।
खिलतें हो क्या पहाड़ के शिखर वाले पेड़ पर।
क्या पड़े रहते हो पत्थर के समान अन्धेरे दर्रों में पहाड़ के
क्या डूबे रहते हो समुद्र के तल में।
क्या रहते हो अगम्य उन्नत आकाश में
कितने लोगों के कल्याण में योग किया मैंने-तुम्हें पाने को।

दूसरों की सहायता भी की कितनी बार।
व्यर्थ हुआ श्रम पा तो सका नहीं।
खर्च किया, फिर भी रहा जैसे का तैसा ही।
सारी दुनिया घूम आया तुम्हारे लिए दौड़-धूप करके।

तुम्हारे लिए ही घूमतें-घूमते गया बहुत थक।
पीछे हटता हूँ पंजों के बल फिर देखता हूँ गौर से।
नम्रता से बोलता हूँ फिर भी जाता हूँ डाँटा।
लगाया पौधा फल का खा लिए फल।
लगाया फूल का पौधा कान पर सजा लिए फूल।
लगाया यश का बीज नहीं लगे वृक्ष पर फल।
पौधा लगाने पर भी पेड़ से नहीं मिले फल।
विशाल हृदय मनुष्य दुवारा छिपा लिए गए हो हृदय में
कस कर पकड़ लिए गए हो मुट्ठी में दयालुओं द्वारा।
क्या तुम मिलते हो पाने की इच्छा रखने से।

नहीं मिलेगा, सोचने पर क्या तुम मिलते हो

क्या मैं तुम्हें मिलने न मिलने का विचार किए बिना खोज रहा हूँ
मेरे हिस्से में है, इस विचार के त्याग से तुम मिलोगे क्या।
यश-कामी पुरुष तुम्हारा हिस्सा शेष है क्या।
क्या उस पेड़ के फल को खाने की इच्छा करते हो।

ऋण

प्रियों में सर्वाधिक प्रिय,
चाहत है, जिसकी सर्वाधिक
माँ है! माँ! केवल माँ।
हमारे बहुत अधिक प्रेम के पात्र हैं,
केवल [illegible], माँ और बाप,
ऋण है हम पर उनका।।
ज्ञानियों का वचन
हैं अन्य सब धाय,
रक्त सम्बन्ध है माँ से।
रक्त का स्रोत है मातृभूमि,
अन्य माँ हैं सामान्य,
माँ है मातृभूमि ही।।
जीवन में मानव,
शब्द-शब्द में व्यक्त करता है,
उऋण नहीं हुआ जा सकता दूध के ऋण से।
सत्य है, नहीं सोच पाता,
नहीं पहचानता माँ को,
नहीं पुकारता माँ को माँ।।
माँ की सेवा नहीं करता जो,
माना जाता है उसे पशु समान,
मुक्ति मिले कैसे इस नाम से।
क्या उपाय करके,
किस प्रकार
मिटाऊँ माँ का दुख।।
अनेक बहनें,
बारिश-घाम से लापरवाह,
नहीं उतारतीं चावल की टोकरी सिर से।

कमर में बांध फेंटा,
त्याग कर लोक-लाज,
सोचो-भाग-दौड़ कर रही हैं किसके लिए।।
बड़े-बूढ़े अनेक,
थाम कर हल हाथ में,
जो चल रहे हैं पीछे बैलों के।
अलग करते हुए कीचड़ से घास,
कुटकी, मच्छर, मक्खियों को सहन कर,
देखो- परिश्रम कर रहे हैं किसके लिए
अनेक अग्रज-अनुजों ने,
लाँघी पर्वत श्रेणियाँ,
देखो- आँखों से आँसू बहा।
दूर तेखाओं[१] पहुँच
पेड़-पौधों के नीचे सोने,
कहो- जा रहे किसके लिए।।
सोचो-कपड़े लपेट कमर पर,
और पहने हुए शरीर पर
फल हैं किस व्यक्ति के पसीने के।
वाणी की सामर्थ्य,
और होना बुद्धिमान,
है किस व्यक्ति के कारण।।
लिखाया पढ़ाया,
सामाजिक बनाया,
मानूँ इसे सत्य।
नहीं जानते कायदे कानून
हैं अज्ञानी खेतिहर प्राणी,
क्या इनका करें शोषण।।
देखो-फटे कपड़े पिता के,
पेबन्द लगी रजाई माँ की,
क्या उनके वस्त्र बदलें।

धोती का कुंजा[2] चढ़ा लें,
उखाड़ दें पेड़ निर्धनता का,
आओ-उऋण हो जाएँ ऋण से पसीने के।।

१. प्राचीन काल का कछार राज्य, जिसे मणिपुरी लोग तेखाओ के नाम से जानते हैं।
२. धोती बाँधने पर जो भाग आगे की ओर घूमदार होता है।

भाई-बहन

(खम्ब-थोइबी शैरेङ् महाकाव्य के शनशेनबा सर्ग से)

केगे-मोइराङ् प्रदेश में पीछे मुड़ देखने पर,
न उड़ता था कोई कीट तक, कह सकें जिसे अपना,
केगे-मोइराङ् में थे वे असहाय-अनाथ,
खम्ब-खम्नु नामके भाई-बहन थे दोनों!
आज था चिन्ता में डूबा खम्ब अग्रजा के लिए!
देख अग्रजा को कहा खम्ब ने यों-
''मातृ तुल्य अग्रजा! पुकारूँगा माँ, अग्रजा नहीं!
मेरी अबोधावस्था में सहा दुख तूने माँ!
भर गई हथेली छालों से! कूट पड़ोस में धान!
ढोते-ढोते धान सिर भी गया है बैठ!
मुझ खुमन के पालन में मातृ तुल्य अग्रजा!
हो गया अब मैं सयाना संभालूँगा अग्रजा का भार!
मैं खुमन जाऊँगा केगे के धनियों के यहाँ
करूँगा परिश्रम मैं और सेवा करूँगा अग्रजा की!
अग्रजा! बोलिए कुछ मान जाइए माँ!''

'हे अनुज केगे- मोइराङ् प्रदेश में
दो प्रवेश-द्वारों को भी नहीं लांघा तुमने,
अब इस केगेप्रदेश में करोगे कहाँ मजदूरी!
चलो हटो छोड़ो भी इसे, नहीं चाहती कहना!
कैसे करूँ तुम्हें समक्ष खड़ा मोइराङ् के।
कुमारिकाएँ कितनी-समवयस्क अनेक!
अनाथ नोङ.याइ उनमें नहीं है कोई भी तुम्हारा!
तुम्हारी अग्रजा मैं होने के कारण अबला
हे खुमन, मैं तो आ नहीं सकती पीछे तुम्हारे!

बलिष्ठ शरीर कान्ति भरा है तुम्हारा,
यदि जाओगे केगे-जनता के मध्य, तो मिलने पर,
पाओगे प्रेमी-जन भी और शत्रु-दृष्टि वाले भी।
जाओ मत अनुज, नहीं देना चाहती अनुमति अग्रजा!
खुमन आयेगा समय–माँ बाप दोनों ने,
सौंप दिया था मुझे अङोम वंशजात फैरोइजाम्बा को!
मोइराङ् का अङोमवंशजात चाओबा, नोङथोम्बा,
जब होवे तुम्हारा सहारा– जाना होगा मुझे वहाँ
उस समय प्रिय अनुज! मिलोगे तुम केगे-जनता से!
वृकोदर अनुज क्षुधा हो शान्त तो है श्रेष्ठ,
कभी न भी भरे पेट तो कर लें सन्तोष।''

कह इस प्रकार समझाया अनुज को!
ओढ़ ली उसने फटी चादर एक!
नित्यप्रति की भाँति द्वार-द्वार
तैयार होते समय माँगने को काम
उत्पन्न हुई मन में बेचारी के विचारों की उथल-पुथल।
''शायद भरता न हो युवा भाई का उदर!
अर्जित होता अधिक यदि कार्य करता वह तरुण।
तब होती तृप्ति पर्याप्त होता खाद्य भी,
प्रिय अनुज मन में विचारता है ऐसा'' सोचती है।।
कमल-नयनों में अनाथ बालिका बेचारी के
छलक आए अश्रु, न रहा दुख का पारावार।।
खम्ब जो विचारता है, वह है नितान्त पृथक।
सहानुभूतिशील शुभेषी अनेक,
उसकी अग्रजा की दशा न देख पाकर,
''खम्ब करो तुम काम अति कष्ट पाया है अग्रजा ने।''
हैं कहते, लज्जित हुआ खम्ब।
बस्ती वालों के ऐसे कथन पर किया था निवेदन अग्रजा से।।

सचमुच सही नहीं जाती दशा अनाथ खम्नु की।।
उपजाऊ जमीन में बीज लगाया हो जैसे बात का
करे विश्राम अग्रजा सोचा करूँगा सेवा उसकी,
मान कर दूसरों की बात कर लिया खम्बने निश्चय।।
जाने को अग्रजा के बस्ती के द्वार-द्वार
तैयारी के समय रोक दिया खम्ब ने खम्नु को।।
आश्चर्यचकित हुई अग्रजा– "प्रिय अनुज!
मत बाधा दो, जाऊँगी मैं, करोगे तुम कार्य कैसे?"
कहकर पूछा खम्नु ने हुई आश्चर्य चकित वह।।
उस खुमन ने– "क्या है! मातृ तुल्य अग्रजा!
माँगूँगा मैं काम। चलानी होगी कुदाल तो चलाऊँगा।
सरपत काटना पड़े तो काटूँगा। कार्य के अनुकूल
मिलेगा पारिश्रमिक इस प्रकार करूँगा कार्य,
इस केगे-मोइराङ् में क्यों न पाऊँगा काम!"
कहा अग्रजा से! – "क्यों? मत करो काम!
भीख भी माँग लेगी अग्रजा तुम्हारी।" कहा खम्नु ने, नहीं मानी।।
खम्ब पकड़ने लगा चरण अग्रजा के लपेट कर गले में वस्त्र[२]––
"मातृ तुल्य अग्रजा! जन्म से आज तक,
अनाथ बेचारी तुम मांगती रही घूम-घूमकर
मिला सो खाया, पाया सो पहना,
तुम्हारे अनुज मैंने बनकर स्वेच्छाचारी
यह खाऊँगा, यह स्वादिष्ट नहीं है कहा नहीं कभी!
आज के दिन तो मेरी भी है एक चाह
मांग रहा आप से कीजिए पूर्ण अग्रजा।"
कह कर मांगा। अग्रजा ने––"प्यारे भैया!
कहो-कहो चाहते हो क्या अग्रजा से?"
बोली प्रिय अनुज से सर्व-दाता सी अग्रजा।।
खम्ब जोड़कर हाथ भरे आँखों में आँसू–
'हे मातृ तुल्य! बेचारी-अनाथ अग्रजा!

तुम्हारे अनुज के लिए माँ-बाप, दोनों ने
छोड़ा नहीं था वस्त्र का टुकड़ा तक।
मैं खम्ब अपने धन से फैरोइजाम्बा जीजा के यहाँ,
पहुँचा भी न सकूँगा अग्रजा को। धन से आंङोम के
नहीं चाहता अनुज विवाह करना अग्रजा का।

निर्बल अग्रजा मांग कर भीख तुमने,
पालन किया मेरा, जो हो गया अब बलवान!
अग्रजा तुम्हारी करूँगा सेवा मैं!
न जाओ कहीं, रहो यहीं, करूँगा कार्य मैं।
मेरे अर्जन से ही होगी सम्पूर्ण व्यवस्था!
मांगता हूँ यही अग्रजा, दीजिए।"
निवेदन कर किया प्रणाम अग्रजा को। सोचा खम्नु ने मन में-
कितना सच है भैया! फिर भी-तुम्हें कैसे
भेजूँ मैं बस्ती में करने को कार्य।।
सोचा खम्नु ने, रोई विचार कर कुछ-कुछ।।
नहीं दिया उत्तर अग्रजा ने, कहे कैसे जाने को,
खम्ब के सुन्दर विचारों की सच्चाई के प्रभाव में,
कह न सकी, मत जाओ, दुख में डूब गई खम्नु।

---

१. मोइराङ् का दूसरा नाम
२. मीतै समाज में नम्र निवेदन के समय गले में वस्त्र लपेटने की परम्परा
प्रचलित रही है।

ख्वाइराकपम चाओबा सिंह

पि-थादोइ[1]

पक्षी तुम कौन हो?
किस जगह चहचहा रहे हो?
जो आ रही है मधुर बोली?

चहचहा रहे हो सामने की टहनी पर?
गा रहे हो आकाश में?
हो गया हूँ मोहित मधुर आवाज पर।

आ गयी ऋतु वसन्त की,
छा गयी नव हरियाली धरती पर,
पक्षी तुम्हें ज्ञात है?

प्रेम वियोगी
बेचारा कोई
घूम कर सारी पृथ्वी,

निराशा भरे स्वर में
दर्द-भरी प्रतिध्वनि के साथ
पुकार रहा किस थादोई[2] को?

पि-थादोई पि-थादोई
थादोई थादोई पि-थादोई
किस के लिए है दीवाना?

वियोग-धूम से विकल व्यक्ति के लिए
प्राकृतिक नियम है,
सुखद कलि-काल में दुख भोगना।

कमल को देखकर

खिलो पुष्प खिलो
आज तो पुष्प खिलो।
जल है पर्याप्त
पुष्प खिलो।

पर्वत तक सूरज के पहुँचने के पूर्व
पहुँचने से पहले पहाड़ी की
तलहटी में परछाई
छाने से पूर्व तराई में लालिमा
पुष्प खिलो।

पतली कमर वाला भ्रमर
पुष्प की सुगन्ध से परिचित
कमल-मधु पर मोहित
आने दो पुष्प अपनी ओर।

गुनगुनाते हुए
निवेदन-कुशल कोई
मन्त्रणा करता है बड़ों से जैसे
गुणगान करने दो वैसे ही।

सम्पन्न मनुष्य के निकट
पुष्प में मधु का अभाव न होने तक
चिपका रहता है भ्रमर जैसे पुष्प से
होता है मित्रों का मिलन स्थल।
प्रिय पुष्प हे कमल
हम भी तुम्हारी तरह हैं

इस भवसागर में–
खिलते हैं बिखरने के लिए।

जैसे तुम हुए पुष्प
सांसारिक मानव
गर्भ में माँ के
मुकुलित हुआ था एक दिन।

जैसे तुम हे पुष्प
पान कर अमृतमय स्तन
इस भवसागर में
खिल रहा हूँ तुम्हारी भाँति।

किन्तु, प्रिय पुष्प
बिखरने के लिए खिलते हैं
मरने के लिए जनमते हैं
हम भी तुम्हारी भाँति।

जीवन-प्रभात के रहते
सूरज डूबने से पहले
तुम्हारी ही भाँति खिलते हैं
तुम्हारी ही भाँति हँसते हैं।

कष्ट भरी कितनी हवाएँ
आना मँडराना अनेक भ्रमरों का
जीवन के भवसागर में
सहन कर रहे हैं पुष्प, तुम्हारी तरह।
क्षीण शक्ति
इच्छा अपूर्ण
उत्साह विहीन

नष्ट हो जायेंगे एक दिन तुम्हारी भाँति।

सूरज के पहुँचने पर पर्वत के निकट
जीवन-संन्ध्या में
पुष्प तुम्हारी ही भाँति
निराशा से भर जायेंगे एक दिन।

विधाता ब्रह्मा ने
फैला कर मोह का जाल
पतंगों की भाँति
सृजा है उड़ लेने को कुछ काल।

हे कमल तुम्हारे
बन तालाब का अलंकार
सदा खिलते रहने से
सार्थक होगी आशा।

किन्तु हे पुष्प
जीवन तो है अल्पायु
कार्य है बहुत
तुम्हारी भाँति ही नष्ट हो जायेगें हे पुष्प।

खिलो, आज खिलो,
पूर्ण विकसित होकर खिलो आज
जल है पर्याप्त
आज खिलो पुष्प।

हवाईबम नवद्वीप चन्द्र सिंह

एकाकी जीवन-नैया

जीवन की धारा में खेता हूँ
मैं अपनी एकाकी जीवन-नैया
उल्टी-सीधी बहती
हैं सभी भयभीत कहीं टकरा गयी तो,
जीवन की धारा में खेता हूँ
मैं अपनी एकाकी जीवन-नैया।

चिल्लाते हैं तट के लोग
क्या है पागल! खेओ
तट की ओर ले जाओ!
नहीं जानते, तो खेते हो क्यों,
जीवन की धारा में खेता हूँ
मैं अपनी एकाकी जीवन-नैया।

सुख-दुख की लहरों के मध्य
द्वेष भरी आलोचना की आंधी से
बचा लीजिए मेरी एकाकी जीवन-नैया
खेलूँ विशाल जल-राशि के पास तक
जीवन की धारा में खेता हूँ
मैं अपनी एकाकी जीवन-नैया।

नववर्ष

जागो नव वर्ष
लमदा[1] की स्वच्छ पूर्णिमा में,
आनन्द से भरी ध्वनि।
धर्म की पावन किरण में,
जाग गया नव वर्ष
लमदा की स्वच्छ पूर्णिमा में।
किसी कोने में काले बादल
जो सिकुड़े हुए छिपे थे भयभीत,
फैल गये हैं चारों ओर
सुखदायी हवा के झोंकों में
जग गया नव वर्ष
लमदा की स्वच्छ पूर्णिमा में।
खो गयी आनन्दमयी चाँदनी
ढक दिया स्वच्छ आकाश,
अंधकार ही हो गया अलंकार
इस सुहावनी पृथ्वी का।
जग गया नव वर्ष
लमदा की स्वच्छ पूर्णिमा में।
कुछ-कुछ उज्ज्वल है कहीं-कहीं
विज्ञान के प्रज्ज्वलित दीप से,
चाहता हूँ देखना पूर्ण रूप से प्रज्ज्वलित।
जग गया नव वर्ष
लमदा की स्वच्छ पूर्णिमा में

---

१. –मणिपुरी वर्ष का अन्तिम महीना। लमदा की पूर्णिमा का अर्थ है–होली की पूर्णिमा।

ध्वनि

तुम्हारी बाँसुरी की मधुर ध्वनि
सुन रहा है सुन रहा है बार-बार जगत्।
जीवन यमुना धारा के तट पर
अचल खड़े कदम्ब वृक्ष के नीचे।
तुम्हारी बाँसुरी की मधुर ध्वनि
सुन रहा है सुन रहा है बार-बार जगत्।
तुम्हारी बाँसुरी की आश्चर्य भरी ध्वनि
गुँजा रही है वायु को शून्य में बार-बार।
यमुना के पवित्र जल की ताल-लय
नहीं टूटने दी, कराया नृत्य कराया।
तुम्हारी बाँसुरी की मधुर ध्वनि
सुन रहा है सुन रहा है बार-बार जगत्।
तुम्हारी बाँसुरी की अनोखी ध्वनि
दिवस के स्वामी को अंगड़ाई लेने दे रही है।
दिवस का स्वामी निरन्तर
विराम नहीं लेने देता जल को, धारण करने देता है अनेक रूप।
तुम्हारी बाँसुरी की मधुर ध्वनि
सुन रहा है सुन रहा है बार-बार जगत्।

क्या सन्देश है कहो वसन्त के अंकुर

क्या संदेश है कहो वसन्त के अंकुर
नव आगन्तुक संसार में।
किसका है सन्देश, किसका है आदेश?
कर धारण सुखद रूप
इस संसार में ज्योतित होना तुम्हारा
सर्दी के अग्नि से जलते हुए
समझ गया समझ गया हे अंकुर
तुम्हें दिये गए आदेश का कारण,
ज्योतित होओ, शोभित होओ जीवन की नव-वेला में
आदेश मान स्वामी का।
दिखाओ उन्नति का चरम उत्कर्ष
अभिमानी संसार में
और दिखा दो अविराम है संसार
स्वयं को भुलाने वाले संसार को।
दिखा दो दिखा दो वसन्त के अंकुर
अटल स्वामी का विधान
देखने संसार को अपनी अन्तिम गति
जान कर भी अनजान को।

अजानी सूरत अनसुना नाम

अजानी सूरत अनसुना नाम
होगा कोई तुम जैसा जाना-पहचाना?
हे अनजान! तुम-सा संगी
मिल पाएगा, होगा क्या इस संसार में?
मनुष्य में, वृक्ष में, अग्नि में, जल में
तुम ही मिलते हो सदैव सर्वत्र।
अजानी सूरत अनसुना नाम
होगा कोई तुम-सा जाना-पहचाना?
अज्ञानान्धकार में समझा पराया
अपने गहन अन्तस् में व्याप्त तुम्हें।
कहीं भी देखूँ दिखता नहीं कुछ
आश्चर्य, तुम्हारी दया के सिवा।
अजानी सूरत अनसुना नाम
होगा कोई तुम-सा जाना-पहचाना?

काम पर चलो

बज उठी बाँसुरी सुनो मन
आई बुलाहट खेत की ओर से
लगी बरसने-पहली बरसात
क्या कर रहे हो तुम यहाँ।
बज उठी बाँसुरी सुनो मन
आई बुलाहट खेत की ओर से।

थामो हल संभालो हँसिया
चलो तुम करने अपना काम
ठीक समय पर नहीं करोगे
काटोगे कल पुराल ही।
बज उठी बाँसुरी सुनो मन
आई बुलाहट खेत की ओर से।

काटनी है भरी फसल
करो तैयारी साल की पहली बौछार के साथ,
समेटते समय फसल
मत भूलो फौरुङ्बा को
बज उठी बाँसुरी सुनो मन
आई बुलाहट खेत की ओर से।

असमाप्त चिन्तन

असमाप्त चिन्तन !
आकांक्षा में असन्तोष!
तुम्हारा कार्य तो
परे है विचार से।

तुम्हारी दया
बह रही है जगत् में
तुम्हारा सौन्दर्य
कर रहा जगत् को सम्मोहित।

ऊँच-नीच का
नहीं भेद, मिल रहा है
भेद किए बिना
धूमिल न होने वाला तेज।

सोचा नहीं उसे
कि दया है तुम्हारी,
सोचा है उसे
स्वयं ही हो जाता है वह।

लमाबम डॉ० कमल सिंह

मैतै कोकिल

(किसी कवि के प्रति)

हे कोकिल मैतै प्रदेश की!
नहीं सुनने को मिला स्वर तुम्हारा दीर्घ-काल से
सोच ली क्या उड़ जाने की बात होकर क्षुब्ध
देख कर कि नहीं है कोई साथी कोकिल।

छिप नहीं सकोगी अब तो,
सुनाई पड़ा था स्वर तुम्हारा एक दिवस
कूक रही थी एक दिन होकर तन्मय
बैठ डालियों पर मैतै-वन की।

सुनने को मधुर स्वर तुम्हारा,
लगाए हैं कान मैतै अनेक,
उड़ आओ फिर मैतै बगिया में,
कूक उठो होकर तन्मय पहले की भाँति।

यह बगिया जिसने नहीं सुना कोकिल स्वर
प्रतीक्षारत है सुनने को उत्सुक, प्यासी,
सुनाओ पंचम स्वर में कूक
न जाएँ ढूँढने कोकिल परदेस।

त्याग बैठने की डाली
छोड़ स्थान दाना चुगने का,
चाहती हो क्यों लौह-पिंजर
न आ सकोगी बाद में निकल उड़ कर।

कूकी थी कोयल एक प्राचीन काल में
सघन वन में उज्जयनी के
दी थी शीतलता भारत उद्यान को,
मोह लिया था मधुर स्वर से विश्व को सारे।

गुंजार की थी प्राचीन काल में तामना[१] ने एक,
पहाड़ी घाटी में पश्चिमी समुद्र पार की,
पार कर अनेक घाटियाँ और समुद्र
गुँजा दिया था पूरब का तट।

हर शाखा पर भारत उद्यान की,
बैठ कर पक्षी सैकड़ों
चहचहा रहे हैं, मोहक स्वर में,
शीतलता उड़ेल रहे हैं सहस्रों मानव-मनों में।

इतनी सुन्दर मैतै-वाटिका में,
सुनाई पड़े यदि कोकिल का स्वर भी,
हो जाएगी कितनी और मनोहर
देख पाऊँगा क्या स्व-चक्षुओं से दृश्य पुनः।

न होने से कोकिल मैतै-वाटिका में,
झड़ गए यों ही आम्र-किसलय।
सूख गयीं व्यर्थ ही डालें तमाल की।
खा गए फल व्यर्थ ही बाहरी कौए।

आम्र-किसलय-गुच्छ मैतै उद्यान के,
बढ़ जाती चूसने से कोकिल स्वर की अनुगूंज।
उसे चूस रहा कौआ कह कड़वा-कड़वा,
सुना जाता नहीं स्वर ''पहाड़ी'' ''पहाड़ी''।
न सुनने तक कोकिल का स्वर,

न होने तक कोकिल के दर्शन,
भर लूँगा कीचड़ से कान,
सी लूँगा आँखें सुई से।

मुँह में भर कर फल, कोकिल,
कूकती है "कुहू" "कुहू" मनोहारी,
कौआ भर पेट-खा पक्के फलों को
बीट करता है मैतै उद्यान में।

अनुगूंज भरो कोकिल तुम आ पर्वतीय घाटी में,
आ बनाओ इस घाटी को निकुंज।
बनाओ प्रवहमान सूखी धारा चन्द्रनदी की,
आह्वान करो इस वन में वीणापाणी का।

सुनने हेतु तुम्हारा मधुर-स्वर
कर रही विश्राम नम्बुल नदी मार्ग में,
कर रही प्रतीक्षा चन्द्रनदी रोक कर धारा,
राह देख रहा आम्र-वृक्ष पहाड़ पर तुम्हारे आने की।

जल से, छोटी नदी और झील के,
सोचकर शान्त न होगी तुम्हारी प्यास,
बैठने को ऊँची डाली नहीं, मन में भी है संकुचित-विचार,
उड़ आयी नहीं कोकिल अभी तक?

एक तो प्रदेश है घिरा पर्वतों से,
कहीं फँस गई एक बार जाल में तो,
उड़-निकल न सकोगी फिर,
उड़ नहीं आई कोकिल, कर यह विचार?

डरो मत कोकिल, उड़ आओ, डरो मत,

जाल नहीं यह दुर्ग है प्रकृति की देन,
बाड़ा है इस मैतै उद्यान का
घेरा है जिसने नौ पर्वत श्रेणियों से।

हे एकान्त प्रिय कोकिल!
सुन कोलाहल मैतै उद्यान में,
उड़ नहीं आई अभी तक?
एक बार तो कूजो मुक्त-कण्ठ से।

ऋतुराज वसन्त का समय,
सुना है चिर सहचर है तुम्हारा
देखो आ गया वसन्त मैतै उद्यान में,
उड़ आने का समय आ गया कोकिल।

---

१. –एक कीट विशेष, जिसकी मधुर आवाज़ बहुत दूर तक जाती है।

मैतै-चनु

बहुत दिन पश्चात्
पधारी है माँ मैतै-चनु,
मैतै साहित्य-मन्दिर में,
भर कर चंगेरी पुष्पों से,
करें अर्पित माँ के चरणों में।

खोजने पुष्प
जाना नहीं वन में दूर
चढ़ना नहीं ऊँचे वृक्षों पर
निकट, पहुँच सके जहाँ हाथ,
खोजें मन-वाटिका में।

मन-वाटिका में विकसित पुष्पों को तोड़,
पिरो कर एकता के धागे में
भर सहनशीलता की चंगेरी में
करें अर्पित माँ के चरणों में।

निर्मित करें पुष्प-मन्दिर माँ के लिए,
नहीं चाहिए मन्दिर लोहे का
नष्ट हो जानें वाला जंग लग जाने पर,
नहीं चाहिए मन्दिर पाषाण का,
विलीन हो जाने वाला धारा में समय की।

नहीं चाहिए मन्दिर ईटों का,
निर्मित हो एक बार ऊँचा,
हो जायेगा जीर्ण समय के गर्त में,
बनायें मन्दिर फूलों का,

उतराता रहे काल की तरंगों पर जो।

सूख जाने पर पुनः अंकुरित होने वाले
पुष्प पौध से
खड़े करें मन्दिर के स्तम्भ,
बढ़ें शाखा-प्रशाखाएँ,
दीर्घ काल तक।

हर मौसम में खिलने वाले,
पुष्पों की खोजें पौध,
रोपें मन्दिर के चहुँ ओर,
शीतलता दें जड़ों को नेत्र-जल के सोते से।

सूख जाये नाशवान देह,
सुरक्षित रहे मन-पुष्प।
खिले झिलमिला कर,
मातृ-मन्दिर के चहुँ ओर।

मातृ-मन्दिर की पुष्प-गंध,
मन्द-मन्थर पवन
उड़ा ले जाए मैतै प्रदेश में सम्पूर्ण,
आ जाये स्फूर्ति अशक्त -मैतै में।

काट कर मन के घने वन को,
रोपें सुन्दर पुष्प-पौध,
अर्पण हेतु मातृ-मन्दिर में,
निर्मित होने दें मनोहर निकुंज।

रहने वाले दूर या निकट,
बड़े या छोटे,

विचारें मैतै चनु की हैं सन्तान।
टूट न जाये पुष्प माला।

देश के पुत्रों, मातृ-सेवकों!
संजीवनी को स्वार्थ-त्याग की,
रोप दो चारों ओर मन्दिर के,
करो कामना मैतै चनु की दीर्घायु की।

मातृ-मन्दिर में उगे पुष्प-पौधों से
मुरझा कर झर जाने वाले पुष्पों को,
बहाए जाकर समय की धारा द्वारा,
तैरने दें समुद्र में सब ओर।

मातृ-भूमि में उगे पुष्प पौधों की,
बढ़ें शाखा-प्रशाखाएँ
रोकें गनन में मेघों का मार्ग
विश्राम करें जिससे परदेसी-विहग भी।

मैतै भूमि में उगे पुष्प,
रोपें समुद्र के भी पार,
खिलें भारत के विश्वविद्यालयों में,
क्यों न हो सकेगा यदि खण्डित न हो पुष्पमाला।

चन्द्र नदी

दिख रहा दूर यह पर्वत कितना सुन्दर।
अभिनव मोहक आकर्षक,
शान्ति भरी उठ रही हिलोरें।
बढ़ा-चढ़ा है नीलगगन से!
जा मिला है क्या नील गगन से यह?
देखने से एक बार,
नहीं हटती दृष्टि,
लेकिन क्या सचमुच है यह उसका रंग?
नहीं, पास पहुँचने पर दृष्टिगोचर होगा।
हिंस्र पशुओं से भरा, घना
जंगल है कँटीली झाड़ियों वाला,
थोड़ी सी है दूब भरी समतल भूमि।
कारुणिक है चन्द्र नदी के समीप का दृश्य!
जंगल में बदल गया है नदी-तट भी,
छा गयी है घास भीतर भी,
लेकिन प्रवहमान है धारा इतिहास की नीचे भूमि के।
तीव्र धारा उसकी एक समय,
उखाड़ फेंकती थी तट के पेड़-पौधे
अब फाल्गु-गंगा सी,
जल-धारा को छोड़कर,
गुप्त प्रदेश में हृदय के भीतर ही भीतर,
प्रवहमान है दुख की धारा चुपचाप।
नहीं मिलती देखने को यह धारा किसी को।
लेकर कांचीपुर का करुण सन्देश,
अहर्निश, लगातार
बह रही है समुद्र की ओर अंधकार के।
गन्तव्य था लोकताक पूर्ववर्ती जलधारा का,

अब उसका गन्तव्य है असीम अंधकार-समुद्र।
तेजस्वी है वह कौन, खड़ा हो दूसरे के तट
सन्नद्ध हो रहा स्नान हेतु, देखता प्यासी दृष्टि से।
है मातृभूमि में भी नदी, विचारते जिसे सूखी धारावाली,
खोदें एक बार देखे निसृत जल।
मिलेगा निर्मल जल, स्नान करें यदि उस जल में,
मिलेगी शान्ति मन को तन को, कितना आनन्दित होगा मन।
रोपें तट पर पुष्पादि, बनायें सीढ़ियाँ घाट पर ईटों की,
नहा सकेंगे दुर्बल-स्वस्थ सब!
भाग मातृ-भूमि से प्राण ले हथेली पर,
जाते हैं धन कमाने, संकटपूर्ण स्थानों पर।
अमूल्य यश भूमि में इसी अपनी
गड़ा है, खोद कर ढूँढें हे तेजस्वी!

विश्व प्रेम

हे युवकों! विज्ञान वेत्ताओं,
विश्वास क्यों नहीं करते मन्त्रों पर?
लग जाने पर प्रेम मन्त्र
अन्धे बन जाओगे, खुली आँखें लिए भी,
बहरे बन जाओगे, सुनाई पड़ते हुए भी,
मन्द हो जायेगी तीक्ष्ण बुद्धि थी।
मन्द पवन, चुराने पर भी पुष्प गंध,
कही जाती है जैसे "सुगन्धित", "सुगन्धित"
चुराने पर भी मन प्रिय-जन द्वारा,
विचारा जायेगा 'प्रेम है' 'प्रेम है'।
काँटे भरी होने पर भी केतकी,
होती है बहुत सुगन्धित,
बार-बार हठ से प्रिय की,
और अधिक लगेगा 'प्रेम है'।
झिड़कियाँ प्रेमी-जन की
कड़वी औषध की तरह,
भर देंगी स्फूर्ति देह में
और प्रसन्न हो जायेगा मन,
आयेगा प्यार हठ पर भी।
मुँह बनाने पर भी,
भासित होगा हँसता है।
स्वर्णहार प्रेम का,
उतार कर गले से प्रेमी के,
पहना सके जो शत्रु को,
कहलाता है व्यक्ति वही सच्चा प्रेमी।

मातृ-तर्पण

दूर परदेस में
खड़े हो ब्रह्मपुत्र के तट
मुँह कर मातृभूमि की दिशा में
कर रहा अर्पण माँ के चरणों में तिल-तण्डुल।

ले माँ मेरे हाथ से
आँसू की बूँद-बूँद के साथ
अंजलि भर जल
अर्पित कर रहा चरण-कमलों में तेरे।

चाहता हूँ करना अर्पण सोना-चाँदी बहुत
चाहता हूँ कराना भोजन कितने दीन-दुखियों को
चाहता हूँ करना दान अनेक गायों का
कुछ भी नहीं कर पाता अभाव के चलते।

माँ की स्मृति में
लगाव भरे श्मशान पर
असमर्थ रहा स्मृति -मन्दिर के निर्माण में
अक्षम रहा स्मृति-सभा के आयोजन में।

सूखे नहीं जब तक नेत्र-अश्रु
विस्मृत न करूँगा तेरे चरण-कमल
पूजूँगा प्रतिमा तेरी
हृदय के स्मृति-मन्दिर में।

अविरल धारावाही
हे धीर ब्रह्मपुत्र!

चढ़ाए जा रहे अपने गर्भ में ये फूल-फल
समर्पित कर देना माँ के चरणों पर।

अपने खोजने से जो मिले
तोड़कर कुछ फल-फूल उपवन से
कर रहा अर्पित माँ तेरे चरण-कमलों में
स्वीकारिये माँ अपने हाथों इसे।

तट के उस पार से
धुंधले दिखने वाले
कोहरे के बीच से
क्या बढ़ा रही है हाथ माँ।

दूर दिख रही इस तराई से
दिखने लगी अस्पष्ट जैसे माँ की मूर्ति
जैसे विलाप सुन पड़ रहा "माँ है" का।
शायद बढ़ा रही है हाथ ग्रहण करने फल-फूल।

इस असीम जल-राशि को
सोचकर, नहीं कर सकूँगी पार
अतृप्त दृष्टि से
क्या छटपटा रही है माँ।

प्रतीक्षा कर, माँ प्रतीक्षा,
इस पार मत आ अभी
दूर से वायु-वेग से आती इस नाव की
कर प्रतीक्षा कुछ क्षण, आऊँगा पार तेरे चरणों में।

उस निर्जन प्रदेश में
खोज कर एक लघु द्वीप

निर्मित कर एक श्रान्ति मन्दिर
करें उपासना माता-पुत्र ईश्वर की।

जल-राशि पर तुम्हारी हे ब्रह्मपुत्र
होकर अंकित स्मृति-चिन्ह
दीर्घ काल तक रहे
मेरे नेत्रों से झरते हुए आँसुओं का।

मनुष्यों के स्मृति-मन्दिर कितने,
खण्डित कर देती हो यों ही,
न मिटाना मेरा स्मृति-चिन्ह
सूख न जाय तुम्हारी धारा जब तक।

स्मृति-सभाएँ करके आयोजित बहुत
गाते हैं स्मृति-गीत अनेक
अव्यक्त-स्मृति को मेरे हृदय की
लय होने दो अपने जीवन-संगीत में, बिना किसी को बताये।

अनेक देशों को करके पार
तोड़कर अनेक पहाड़ों को
बह जाओ समुद्र की दिशा में
विलीन हो जाने दो गगन में अपने गीत।

लगातार बहने वाले ये आँसू
लगातार बहने वाली तुम्हारी यह धारा
मिलकर दोनों धाराएँ
निर्मित करें संगम-स्थल एक
नाम दूँगा उसे स्मृति-संगम।

माँ से बिछुड़े हुए,

किसी तीर्थ-यात्री को
डुबकी लगाने दो उसमें
मिट जाए किंचित पीड़ा मेरी।

अपनी धारा-रूप के
छूने पर आँसू रूपी मिजराब से
गूँजने दो स्वर माँ-माँ
व्यापने दो आकाश में वह ध्वनि।

हृदय-स्मृति जिससे परिचित न हो कोई
स्थान जहाँ पहुँच न सकता हो कोई
विलसित होने दो किसी को बताए बिना
अमिट रहे यह स्मृति सर्वदा।

प्राचीन मैतै साहित्य

गई कहाँ चली हे माँ।

सुवासित केतकी-सी!
वेला में तुम्हारे मुकुलन की,
उत्साह भरे बच्चे तुम्हारे,
रहे खेल स्वच्छन्दता से।
गई कहाँ चली हे माँ!

बजने वाली गहन रात्रि में,
मधुर धुन के समान बाँसुरी की,
पुकारने पर "मैं आ गयी",
आये थे दौड़ चरणों की ओर तुम्हारे,
एक हृदय हो एकत्र होकर
पुकार के साथ "पियेंगे अमृत"।

सुन शंख की ध्वनि,
वस्त्राादि की व्यवस्था को संकीर्तन हेतु,
बच्चों को बरजने के शब्दों के साथ ही,
प्रोत्साहन के स्वर वाली,
गई कहाँ चली हे माँ!
बरज दो एक बार तो बच्चों को अपने।

मोइराङ् पर्व[१] की भाँति,
त्याग कर श्रेष्ठ-भवन,
हो निद्रामग्न टूटे लुपाक[२] में?
मच्छर, मक्खी के काटते हुये,
सोओगी कब तक?
गई कहाँ चली हे माँ!

लिपट वस्त्रों में फटे-पुराने,
जाकर पोंगे के भीतर,
छिपी रहोगी वर्षों तक कितने?
बिसार पाओगी कैसे दुख मन का?
गई कहाँ चली हे माँ!
एक बार तो ले अंक में बच्चों को अपने।

ढह गया माँ मन्दिर तुम्हारा,
उखाड़ फेंका हवा ने शजिबू[3] की,
ढक गया दूब-दूर्वा से,
झींगुर-टिड्डी का हो गया क्रीड़ा-स्थल
भर गया पानी से बरसा के।
गई कहाँ चली हे माँ!

तुम्हारी दया से माँ,
फूट पड़ी है बोली कुछ-कुछ
रूप देखा नहीं तुम्हारा किन्तु!
सीखा नहीं बिलखने का स्वर
गई कहाँ चली हे माँ!
ले लो माँ एक बार तो अंक में।

सोचकर हैं निर्बल बच्चे,
भविष्य की छोड़ सभी आशाएँ,
घेर नौ पर्वत-मालाओं से,
क्या बन्द कर दी लोह-अर्गला?
गई कहाँ चली हे माँ!
ले लो अंक में एक बार तो अपने बच्चों को।
सुनकर तुम्हारी आवाज क्रोध भरी,
हो गई समुद्र की गर्जना भी धीमी ज्यों,
चले गए जनजाति-जन पर्वतों में,

आ न सकी विदेशी बीमारी भी,
उसी भाँति भयंकर स्वर से,
बरजो एक बार तो अपने बच्चों को।

तुम्हारे मधुर-धीमे कूजन के सामने,
चली गई कोयल छोड़ मणिपुर,
वैसे ही मधुर स्वर से,
उद्‌बोधित करो एक बार तो अपने बच्चों को!
गई कहाँ चली हे माँ!
विस्मृत कर दिया कि सन्तान है तुम्हारी?

जैसे अमृत भरे तुम्हारे शब्द,
हैं पौधों को फलों से लादने वाले,
पुष्प-पौधों पर खिलाने वाले उत्फुल्ल पुष्प,
वैसे ही मधुर शब्दों से,
उद्‌बोधित्त करो एक बार तो अपने बच्चों को
गई कहाँ चली हे माँ!

सुन तुम्हारे संयम-भरे शब्द,
नम्बुल नदी ने पतली धारा वाली,
त्याग इच्छा दूर समुद्र तक जाने की,
कर दिया आत्म-समर्पण लोकताक में
वैसे ही संयमपूर्ण शब्दों से
उद्‌बोधन दो अपने बच्चों को।

---

१. —मोइराङ् नामक क्षेत्र की लोकगाथाओं पर आधारित जात्रा-लीला या उसका गायन।
२. — बाँस की बनी ढक्कन वाली वर्गाकार टोकरी।
३. — मणिपुरी वर्ष का प्रथम महीना।

आज का मैतै साहित्य

खिली तमिल, खिली तेलुगु
भारत की इस वाटिका में,
आ दूर समुद्र-तट से।
लाँघ ऊँचे बर्फीले टीलों को,
आ गयी नेपाली भारतीय वाटिका में
कल की खासी भी हो गयी मुकुलित भारत के कोने से।

मुर्झाता है क्यों तुम्हारा चेहरा माँ सखियों के बीच अपनी?
क्यों नहीं जन्मते नव किसलय?
क्यों नहीं होते मुकुलित नए पुष्प?
क्यों नहीं फैलाती शाखा-प्रशाखाएँ?
उचित भरपूर जल से न सींचने से,
सोच लिया है मन में क्या सूख जाना ही है अच्छा?
जान गया माँ, तुम ही हो निर्धन पुष्प,
भारत की इस वाटिका में।

देखो, माँ तुम्हारे अज्ञानी पुत्र,
न चढ़ा जल चरणों पर तुम्हारे,
प्रयासरत हैं खोदने को पोखर मरुभूमि में
कर रहे हैं पीछा माया--मरीचिका का पकड़ने को।।

अशाङ्‌बम मीनकेतन सिंह

स्वामी से

तेरा है यह जीवन भी
तू ही नाड़ी की धड़कन भी
        पूरे शरीर में व्याप्त
आगमन भी तेरे आदेश से
तेरे लिए है जीवन भी
        क्यों है इतनी दूर।

फूल का पौधा है तू
फूल हूँ मैं
        अनेक पंखुड़ियों से मुकुलित
सागर है तू
झाग हूँ मैं
        चाहता है क्या।

हटा दे बाड़
मैं की बाड़
        जो है तेरे-मेरे मध्य।

हटा दे पर्दा
शून्य-अन्धकार का
        जो है तेरे-मेरे मध्य।

संसार-मृग

मोहित कर लिया क्षण-मात्र में
मिथ्या पवन-बाँसुरी ने
डूब रहा है दुख में
संसार-मृग मूर्खता से
गरज रही सामने
दहकती दावाग्नि,
खड़ा है पीछे
भय कर विराट,
फैल गयीं दायीं ओर
आश्चर्य भरी जल-राशि,
बिछा दिया बाईं ओर
दुखदायी जाल,
डूब रहा है दुख में
भागे चाहे जिस ओर,
भोगता है दुख
हर छलांग में।

जागरण गीत

माँ, माँ, जागो माँ,
आँखें खोलो माँ,
रूठी हुई, आज स्वप्न में।

चिर काल से निद्रा मग्न,
पुत्रवती होकर भी निपूती सी,
सन्तान की पुकार न सुननेवाली,
न सूखने वाले रूठे आँसू की धार
पोंछ लो माँ,
धार कमल नयन की।

दूसरों की गोद में बड़ी होने वाली
परायी भाषा पर आश्रित
माँ की शक्ल न पहचानने वाली
सन्तान है बेचारी
पुकारूँगा "माँ"
आज के दिन तो।

मधुर नाम माँ का,
भेद आकाश-धरती दोनों को
गूँजने दो माँ,
पुत्र के संवेदित हृदय-तल में।

माँ,माँ, जागो माँ,
आँखें खोलो माँ,
रूठी हुई स्वप्न में।

स्वर्ग से उतर आओ

अग्रज कवि–आदि रचनाकार,
क्या उतरोगे नहीं स्वर्ग से
स्वर्ग से उतर आओ!

''विश्व की स्वर्णिम केन्द्र-स्थली
प्रिय नाम जननी का''
करना नहीं क्या महिमा गान
करो आकर महिमा गान!

''खेत-खलिहान में हरियाली के समय
पड़ते समय छाया पर्वत की
तरंगित हवा के झोंकों से
लहराता परिधान धारण करने वाली,
विश्व की स्वर्णिम केन्द्र–स्थली
प्रिय नाम मणि वाली''
रचना नहीं करनी क्या कविता की
आओ रचो कविता।

हृदय की ममता के कारण
स्तनामृत धारा-तरंगों के साथ
इम्फाल-नम्बुल- के रूप में बहने वाली,
सन्तानों को भरपूर प्यार देने वाली,
विश्व की स्वर्णिम केन्द्र-स्थली
पर्वतों का फेंटा बांधने वाली जननी,
करना नहीं क्या वर्णन
आओ करो वर्णन!
संतानों को प्यार करने वाली

उदात्त हृदय वाली जननी
प्रिय नाम चिङ.खै वाली
क्या तुमने विस्मृत कर दिया हे कवि!
जागोगे नहीं क्या
आओ जागो!

अपने अनुगामियों की दुविधा के समय
अपने अनुजों की वाणी-बाधा के समय
कवि तुम्हें पुकार रहा है
प्रारम्भ-गान नहीं करना क्या
आओ करो प्रारम्भ-गान!

डाली के पक्षियों से बिछुड़ते समय
बादल, वायु के बीच भटकते समय
हाथ नहीं पकड़ना क्या
आओ हाथ पकड़ो।

थोड़े समय के लिए
मन्द स्वर में
माँ के प्रिय नाम का गुणगान
"विश्व की स्वर्णिम केन्द्र स्थली
माँ के सात गोत्र"
गुणगान में प्रस्तुत नहीं होना क्या
आओ प्रस्तुत होओ!

तुम्हारे सभी अनुगामी-अनुज
माँ के स्तनामृत का
चुकाने के लिए ऋण
शंकाकुल होकर राह में

निढाल होकर बैठ
हे अग्रज! खोजते हैं तुम्हारे पद-चिह्न!
मार्ग नहीं दिखाना क्या
दिखाओ मार्ग!

"विश्व की स्वर्णिम केन्द्र-स्थली
अनादिकाल से प्रकाशमान श्रेष्ठ"
कह कर नहीं पुकारना क्या
आओ पुकारो!

अग्रज गायक–आदि रचनाकार
हवा के संग उतर नहीं आना क्या
आओ उतर आओ।

प्रिये थादोईं

खोइरेन्ताक में जन्मा हूँ मैं
कहते हैं लोग मुझे पिथादोई
प्रिया का नाम गाने के फलस्वरूप।

बन सखा वसन्त का
घूमा पृथ्वी भर
खिले फूलों में खोजते हुए लाल फूल
बिता रहा हूँ पक्षी का जीवन।

किया अर्पित हृदय अपना किसी प्रेमिका को,
उसी प्रेम का फल मिला गालियों, भर्त्सनाओं में
प्रेम बढ़ा हृदय में और भी गालियाँ खा कर,
की अर्पित प्रेम-पूजा जीवन-भर कदम-कदम पर।
पक्षी का मेरा जन्म है इसी हेतु,
इसी हेतु भ्रमण किया सारी पृथ्वी का।
बहुत बार लिया जन्म पक्षी का, विलीन हो गया वह प्रेम भी,
किन्तु हृदय यह भुला नहीं पाया उसे।

प्राप्त कर वसन्त का झोंका
मृदुल-कोमल पुष्पों के खिलने के काल में
नृत्य रत पुष्पों में
प्रिया की छाया का अनुमान कर
देखता हूँ मन-भर—
रटता हूँ जो प्रिय नाम पिथादोई।
थादोई थादोई पिथादोई;

मलयपवन का अनपेक्षित आघात
कोयल-दूतिका का सन्देश
उरीरै[2] की प्रेम अभिव्यक्तियाँ
प्रेम के रोमांच में पेड़ों से लिपटना
फूलों के केशों का इधर-उधर झूम कर
इठलाना देखते ही
शान्ति पाता है मेरा पक्षी-हृदय
रटता हूँ जो प्रिय नाम पिथादोई
थादोई थादोई पिथादोई।

वन-उपवन को सुन्दर बनाने वाले पुष्प
पर्वती घाटी के सौन्दर्य को निखारने वाले पुष्प
मेलै लैस्ना नोङ.जुम पाल[3]
मृदुल शान्ति से खिलने वाले
फूलों के केशों का इधर-उधर झूम कर
इठलाना देखते ही
रटता हूँ जो प्रिय नाम-पिथादोई
थादोई थादोई पिथादोई

बन सखा ऋतु-राज का
घूमा पृथ्वी भर,
व्यतीत कर रहा हूँ ऐसे ही अपना जीवन,
अपना जीवन पक्षी-रूप में।

---

१. मोइराङ् के एक लोक-चरित्र थोइबी का नाम थादोई है कवि ने प्रिये थादोई का प्रयोग प्रिया थादोई के लिए किया है।

२. एक पुष्प विशेष का नाम, जो बेल पर खिलता है। यह बहुत सुगन्धित होता है।

३. सोने के रंग का, वर्षा के जल से जीवित रहने वाला ऑरकिड पुष्प, जो ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व रखता है।

कमल से

ब्रह्म मुहूर्त में आने वाले अनेक पक्षी
आ जाते हैं इस अपराह्न में भी–
बैठ बाँस की फुनगी पर
चहचहाता है चरोइ' टिंऊँ चिट्-टिऊँ चिट् करके,
पेड़ों के झुरमुट में
गा रहा है झींगुर नें ऽऽ–नें ऽऽ।

केवल वे ही नहीं–
झींगुर और झिल्ली के वंशज
समय परिवर्तन के गायक,
मृदुलता से निं ऽऽ निं ऽऽ ध्वनि गुंजा रहे
अनुसार समय परिवर्तन के।

शकाब्द बदल जाने पर

बायें अट्ठारह
और आगे छियालीस के पूर्वाद्र्ध में
मैतै साहित्य के संसार में
दो सौ वर्ष अन्धेरे में रहने के वाद
जब प्रात: आया निकट
प्रकाश और अन्धकार के उस सन्धिकाल में
अंगड़ाई ली मीतै मातृ-भाषा ने

पक्षी अनेक गा उठे
गलाफू फुला कर गाने वाला
परिपक्व मधुर स्वर में
राजधानी कांची में पलने वाला
कहाँ है कमल-पक्षी।

प्यारे पक्षी कांची–वाटिका के!
सुनो चहचहा रहे गलाफू फुला कर
अनेक तुम्हारे साथी
ब्रह्म मुहूर्त में साथ-साथ रहने वाले–
उनके आरोह-अवरोह के तरंगित स्वर
मैतै हवा के झोंकों के साथ
टकरा कर पेड़-पौधों से
हो उठते हैं और भी तरंगायित
गा रहे हैं झूम-झूम कर
हो गया है तुम्हें क्या!

ओह–भूल गया था बुरा न मानना...
जब करके न्यौछावर प्राण गाया था
तुम्हारा हृदय पिघल कर
बह गया था,
तुम्हारा तन भी अपने साथ
बहा ले गया था,
सवेरा होने पर,
तुम्हारा प्राण-पक्षी मुक्त होकर
उड़ गया,

शान्त मुक्त हवा
हर क्षण गाने वाली
''बहुत दिन पश्चात
पधारी है माँ मैतै चनु
मैतै साहित्य-मन्दिर में,
भर कर चंगेरी पुष्पों से,
करें अर्पित माँ के चरणों में।''
ओह! सुनीं ही नहीं बुरा न मानना।

तुम्हारी सिद्ध गायन शैली
माँ मैतै चनु के
जागरण की सेवा के योग्य होते ही
देख कर अवसर–
सुन किसी आदमी द्वारा रोक लिया जाएगा
उसकी इच्छा टूट जाएगी–
पूर्ण सवेरा होने से पूर्व
जानता हूँ, ले गया वह, पक्षी तुझे फुसलाकर।
पाला पिलाकर अमृत।

माँ की जागरण-सेवा।
मिलेगी तुम्हारे साथी पक्षियों को!
कांची के भाग्यवान पक्षी!
रहे सौभाग्य तुम्हारे हिस्से में।
मूर्ख जान हंसों मत
सुन व्याकुल मन की बात।

दुख की भँवर को–
आनन्द से विपरीत करने वाला
शून्य तरंगों से भरीं
हवा के उस पार रहने वाला
जगत का स्वामी भी
मानव के निर्मल हृदय के प्रति
ईर्ष्या करता है, मत भूलो।

रुचि-अरुचि का विचार किए बिना
अर्पित कर प्राण, चढ़ाता जो पुष्प
ग्रहण कर लेता है, स्मरण रखो।
जय हो भाग्यवान पक्षी
कांची वाटिका के प्रिय पक्षी।

१–श्यामा के समान एक पक्षी।

अराङ्बम दरेन्द्रजित सिंह

कंस की राजसभा

कहते हैं मणि-मुक्ताओं से सजी थी अति सुन्दर सभा
मणि-खचित पंक्तिबद्ध स्तम्भ
उन पर टिकी स्फटिक निर्मित छत
मणियाँ पीले, लाल, हरे वर्णों की
सजाया था उनके बना कर पुष्प गुच्छ।

पुष्प-गुच्छों के मध्य भी मणियाँ हरी-रक्तवर्णी
झूल रहा कुसुम-वर्ण समूह वहाँ
घूम-घूम नृत्य करती बिजली जिस पर।
किनारे पर चारों ओर स्वर्णिम पत्तियों के
झूलतीं मुक्ता पंक्तियाँ परस्पर सटी हुई
पत्तों से युक्त तरह-तरह के फूल
खिले हुए रंग बिरंगे मन करते मोहित
आजकी सभा ने तो उन सबको भी जीत लिया है।

चाँदी का बाना सोने का ताना
मिल सभी रंगों से मूंगे का धागा
सात परतों का थाकन नृप को कर रहा अलंकृत है।

सुडोल नितंब भुजा अति सुशोभिता
चार समवयस्काओं का मोरछल की पकड़ चँवर
करना नृप की सेवा अति सुन्दर है।

चँवर की वायु से तनिक हिलता थाकन
हवा के झोंकों से समुद्र सतह पर
नृत्य-सी करती लहरें लगती सुन्दर हैं।
चेहरे का रंग, देह मदन को करती मात
दो-दो दोनों ओर खड़े चार जवान-
एक ले खुदै-पात्र एक ले पीक-दान करते सेवा,
एक स्वर्ण-पात्र में रख ताम्बुल-पान
एक यथा समय देकर सोने का हुक्का कर रहा सेवा है।

अलंकृत-पोशाकों से सज्जित नृप के सेवक
पंखा, छतरी अलवार पकड़कर
चतुर्दिक रह कर रहे सेवा, कर अनुकरण-
कुछ दिनों पश्चात इन्द्रप्रस्थ की राजधानी में
राजसूय-यज्ञ में युधिष्ठिर भूप की
सेवा करेंगे भीम अर्जुन मानो उसी के समान हैं।

पकड़ हाथों में चोब करते दरवाजों की रखवाली द्वारपाल
जैसे नन्दी, भृंगी दोनों हैं महादेव के स्वर्णद्वार पर
रक्षा करते हैं वैसे ही रक्षा करने पर सभाद्वार पर सतर्क
प्रवेश नहीं पा सकते सरलता से कीड़े-मकोड़े से देवता तक!

हे सम्राट श्रेष्ठ, धरा पर तुम ही सर्वोत्कृष्ट!
वसन्त के मृदु मलय पवन
देख सभा को चारों ओर धीरे-धीरे बह रही,
ला फल-फूलों की सुगंध सभा मध्य बिखरा रही-

सुगन्धित वस्तुओं से बना धूप-दीप जलने पर
कर आनन्दित मन सभा मध्य फैला रही है।

किस कुशल संयोजक के द्वारा संयोजित कार्य है?
विश्वकर्मा के नाम को लजानेवाला शिल्पी मय
उस समय बनायी जाने वाली लंकापुरी
बनी सोने से जिसका स्वामी था रावण
कही जाने वाली सभा भी ऐसी नहीं।

---

१. मणिपुर की सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार देवता या राजा के सिंहासन के ऊपर कपड़े या कागज का आयताकार छत्र लगाया जाता है। यह छत्र विषम संख्या में एक के बाद एक ऊपर नीचे लगाई गई छतरियों से बनता है।

मातृ-भूमि

मातृ-भूमि, मातृ-भूमि नहीं देखी तुम-सी।
तुम जैसी प्यारी, मन को देने वाली तोष।।
पूर्व के सूर्य की प्रथम पग-स्थली भारत सीमा की अन्तिम स्थली।
प्रकृति माँ की सुखदायी क्रीड़ा स्थली।
दग्ध हृदय के दुख की शमन-स्थली।।
सघन फलित फल-फूलों से भरे-पूरे धान के गुच्छों से
दृष्टि-पथ में शान्ति बिखराने वाली।
सन्तानों को भरपूर अन्न-भाग दात्री।।
कुँज-कुँज में सब कहीं तराई घाटी में सभी जगह
पक्षी करते हैं गुणगान तुम्हारा।
प्रवहमान शान्ति की निश्शब्द धारा।।
तुम जैसी शान्त चित्त सन्तानों को दुलारने वाली
तुम जैसी तुम्हारी सखी और है कहीं।
तुम जैसी माँ और है कहीं।।
जन्म-दात्री अनेक शक्तिवानों की पालनहार अनेक वीरों की
वीरेन्द्र टिकेन्द्र से सिंह-सपूत का।
अंकित है नाम भारत-इतिहास में।।
श्रेष्ठ नृप चिंथंलेन निर्मल पुष्प सा भक्त-श्रेष्ठ
स्वर्णमूर्ति का जय सिंह चक्रवर्ती।
माँ के प्रति कर्त्तव्यपालन का श्रेष्ठ-योजक।।
ब्रिटिश शासन से मुकाबले में दिखाने वाला युद्ध में पुरुषार्थ
अमर कीर्ति-वृक्ष लगाने वाले सिंह।
गम्भीर, नरसहि हैं तेरे अवतारी देवपुत्र।।
देश की न्याय-नीति में दुश्मनों को मिटाने की नीति में
प्रजा को सन्तुष्ट करने में देव-सा।
सूर्य-सा प्रकाशमान नाम है ईश्वर।।

नाम कहूँ उसका –चन्द्रकीर्ति   कीर्ति का सिरमौर
ब्रिटिश का सम्मान पाया अपनी चतुराई से।
ध्रुव तारे की भाँति देदीप्यमान स्पष्ट।।
दे ऐसी सन्तानों को जन्म   सखियों की बन अगुआ
भोर के तारे की भाँति मुस्कराने वाली।
अपने स्वरूप की छाया आकाश तक पहुँचाने वाली।।
किसी कुपुत्र ने   ईर्ष्या की अग्नि में जल
कर दिया माँ को बदनाम।
लगाया कलंक माँ के आँचल पर।।
आने वाले नव सन्तान   कर्त्तव्य भुलाने वाले माँ के प्रति
माँ के इस तरह के कलंक को।
सोचते नहीं मिटाने को कितने मूर्ख।।
अनेक पुत्र सिंह   हो गए काल ग्रस्त
बिलख रही माँ उनके लिए।
नहीं करते विचार जीवित-पुत्र इसका।।
रख मैतै नाम   भूल कर मातृ-कर्त्तव्य
चढ़ाकर वस्त्रों पर अभिमान का रंग।
पोतकर नरक की कीचड़ ललाट पर।।
अबोध अनेक सन्तान   मंद बुद्धि वाली
फिर आयेंगी माँ की गोद में।
निभायेंगी कर्त्तव्य माँ के प्रति।।
ईश्वर को जन्म देने वाली माँ   नरसिंह का पोषण करने वाली देवी
पोंछलो आँखों के अश्रु एक बार तो।
बिखरा दो एक बार वही पुरानी मुस्कान।।

स्मृति

इस दुखी जीवन ने झाँका
सागररूपी समय के पथरीले किनारे के
छोटे-छोटे अंकित स्पष्ट अक्षरों को
पहचानने की कोशिश करते हुए झाँका।
निरन्तर दौड़ रही है तरंगित धारा।
आघात कर रही है जोर-जोर से पत्थरों पर।
कोशिश कर रही है अक्षरों को मिटाने की,
नहीं मिट सके, बढ़ती जाती है उनकी चमक अत्यन्त
एक बार पीछे मुड़कर जोर से बोले अक्षर
उनकी ऊँची आवाज ने धारा की आवाज को दबा दिया
"मनुष्य-योनि में देवताओं के सुकर्मों का परिणाम है
उनके अमिट कृत्यों की पहचान हैं।
संसार रोते-रोते समाप्त हो जाएगा।
पत्थरों पर अंकित हम हँसते रह जाएँगे।"

तू है कहाँ

(१)

वसन्त की रात में
तरल चाँदी से भीगी हुई सीं उज्ज्वल चाँदनी में
दक्षिण से आए मलयानिल के हल्के झोंके से
कोलाहल रहित निःस्तब्ध वेला में
प्रकृति का स्वर तेरे गुण गाता है।
तू है कहाँ?

(२)

ग्रीष्म ऋतु की सुबह
ओस की बूँदों से रातभर प्रक्षालित
नवपल्लवों के बीच चुपचाप सहमा छिपा
हवा के झोंकों से मन्द-मन्द दोलायमान
मुकुलित पुष्प तुझे देखकर हँसता है
तू है कहाँ?

(३)

वर्षा ऋतु की दोपहर में
सारे आकाश में घने-गहरे उड़नेवाली
आसमान में उमड़-घुमड़ने वाली घटाएँ
इस पृथ्वी पर जोर से गरजते हुए बरसकर
तेरे आदेश से पापों के ढेर धोती हैं
तू है कहाँ?

(४)

शरद की शाम
अस्ताचल के समीप पहुँचते ही सूर्य

हल्की लालिमा से ढके सफेद बादल
सुनहरे से रंगे हरियाले खेत
तुझे खोजने जाते, कदम तेज करते हैं
तू है कहाँ?

(५)

शीत ऋतु की सन्ध्या में
सारे पत्ते मौसमी बर्फ के आघात से
हवा के झोंकों से पूर्णतः सूखे
वियोगाग्नि से तप्त सारे पेड़-पौधे
तेरी ओर देखकर प्रेम की धारा बहाते हैं
तू है कहाँ?

आह्वान

सिर की केश राशि
बिछा कर धरती पर
सजा रहा हूँ भक्ति की कामना का आसन।
आसन ग्रहण कीजिये हे देवेन्द्र
हे लोकनाथ हे तात
पाने दीजिए चरण-कमल।
नेत्रों में भर आए जल से
अर्पित करता हूँ प्रेम की धारा
हो जाए नष्ट अभिमान का ज्वलित-ताप।
मिथ्या सांसारिक माया
असत्त-कृत्रिम-परनिंदा
त्याग दी, इतनी है मेरी आशा।
कहाँ है जगत् की शान्ति
किसमें है तुम्हारी कांति
बता दो, तुमसे वही रहा हूँ मांग।
सिर की केश राशि
बिछा कर धरती पर
सजा रहा हूँ भक्ति की कामना का आसन।

राजकुमार शीतलजीत सिंह

लीला

तुम्हारे मृदंग-वादन की शैली और ताल,
मृदंग की वह शैली और ताल है मन-पसन्द मेरी।
जीवन में दो दिन के विचारता नहीं पसंद-ना पसन्द,
पूर्ण हो तुम्हारी इच्छा-वही है मेरी भी इच्छा।

करूँगा अनुगमन तुम्हारे हर कदम का,
गाऊँगा और जपूँगा नाम तुम्हारा।
आने दो सहस्त्रों शत्रुओं को
होगा नहीं कुछ भी तुम हो जब।
आने दो कष्ट अनेक,
दो शक्ति, करूँगा सामना।
न आना तुम कभी रक्षा हेतु
पुकारें, है योग्य यह दास तुम्हारा।
आने दो सहस्त्रों वियोग, लाखों बिछोह,
संभालो कि उनके लिए न बहें आँसू।
उनके लिए रोऊँगा नहीं-हसूँगा सिर्फ,
तुम, जो सिर्फ हो मेरे, न मिले तो रोऊँगा।

भय मत करो

करो मत भय,
करके भय पलायन करते हो क्यों
सन्तान नहीं है तुम्हारी सन्तान
तुम्हारी नहीं है, तुम्हारी वह पत्नी,
कौन है तात,
कौन है माँ,
ब्रह्मा के लिए भी ईर्ष्या का हेतु यह जन्म
क्या नहीं है तुम्हारा?

प्रेम-दान

प्रभु,

माँग रहे हैं प्रेम,
क्यों न दिया जाएगा।
पधारिए बन कर मानव
दूँगी भिक्षा अवश्य।
दें और मांगें प्रेम
बनावें जीवन सफल राधा का।

राधा-मन-हरण

राधा-मन हरण हेतु
बजने वाली बाँसुरी का वह सुर
मेरी इस बाँसुरी में
भर गया, जिसका नहीं था विश्वास
भर देना प्रेम के अक्षर
मुझ अशक्त से
नहीं हो सकेगा यह शायद
भर दो तुम ही
नन्द-पुत्र कृष्ण ने तो
छिपा दिए हैं वे अक्षर
नहीं बनेगा यदि गुरु वह
सिखाने वाला होगा नहीं कोई
कोई भी पूर्ण रूप से
नहीं सकेगा सिखा
जाऊँगा शरण उसकी-
करूँगा अर्पित यह जीवन-
पुकारूँगा जोर से
करे दया मुझ पर।

युद्ध के पूर्वाह्न में

छा गयी उदासी अर्जुन के चन्द्र से मुख पर
दिखी मुद्रा उसकी बोझिल उलझन भरे विचारों से।
देख उस रूप को, कह–क्या हुआ,
पूछा कृष्ण ने घूम अर्जुन की ओर।
क्या है यह, तुम कर रहे हो जो
डूबे हो क्यों चिन्ता में, आकर युद्ध में।
भूल गए हो तुम, है क्षत्रिय कुल तुम्हारा
है कर्त्तव्य युद्ध करना, होते हैं क्षत्रिय युद्ध प्रिय।
नाशवान है शरीर, अमर है आत्मा
आसान है नए वस्त्र धारण करना पुराने छोड़।
विश्वास नहीं हो तो सुनो कह रहा हूँ मैं।
मृत्यु है तो जन्म है, जन्म है, तो है मृत्यु।
घटित इस अनिवार्य क्रम को
सोच क्यों रहे हो बन तुम अज्ञानी
उठो शीघ्र उठाओ गाण्डीव
कहेंगे लोग कायर, अनिच्छुक अमर कीर्ति का।
होना हो साधु-संन्यासी तो होओ गृहस्थ होने के बाद
सिर्फ वस्त्र से होगा नहीं कुछ, है मन ही मूल।
जानते हुए भी तुम भूल बैठे हो पूर्व जन्म को
धर्म के विनाश के समय रक्षा करता हूँ मैं धर्म की।
पीड़ित होते साधु जन जब पापियों के अत्याचार से
मर्त्य लोक में आ त्राण देता हूँ साधुओं को।

कर्मो से परे, किन्तु हूँ कर्म-बन्धन निर्धारक
यदि नहीं करूँ तो रह जाएँगे सारे ऐसे ही बैठे।
कर्म ही है करणीय नहीं खोजना फल को
तुम सिर्फ हो कर्मी मैं हूँ करवाने वाला।

खाना-पीना, घूमना-फिरना सभी
सोचो-सब है मुझसे, कर दूँगा पाप से मुक्त।
लगते हो ज्ञानी-से लेकिन नहीं है ज्ञान तुम में
सोचो तुम्हारी आत्मा है परे जन्म-मरण से।
करके सिर्फ बड़े काम, होने से केवल ज्ञानी
नहीं पाता मुझे, रह जाता है मझधार में।
भक्ति का साधक अवश्य ही करेगा प्राप्त मुझे
मानता हूँ उसे ही मैं सर्वोच्च स्थान पर।
सभी धर्मों को त्यागो आ जाओ शरण में मेरी
कर दूँगा पापों से मुक्त अनावश्यक मत होओ परेशान।

परिशिष्ट

नवजागरण कालीन मणिपुरी कविता : एक दृष्टि

❑ देवराज

सन् 1929 में कमल (डॉ० लमाबम कमल सिंह) के काव्य-संग्रह 'लै परेङ्' (पुष्प-माला) में नवजागरण कालीन काव्य-सौन्दर्य एवं तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक चिन्ताओं का विस्फोट हुआ। यद्यपि इससे पहले ख्वाइराकपम चाओबा की गद्य रचनाओं (कान्नव वा – 1924, फिदम-1925, वाखल-1926) में भी नवजागरण की हलचल अनुभव होने लगी थी, किन्तु वह 'लै-परेङ्' की भाँति स्पष्ट-सशक्त नहीं थी। कमल के इस संग्रह की अठारह कविताओं में अभिव्यक्ति की विलक्षणता तो है ही, साथ ही अंगरेजी साम्राज्यवाद का तीक्ष्ण-विरोध भी है। इस संग्रह की एक और विशेषता ध्यान आकर्षित करती है, वह है, 'आत्म निरीक्षण' का आग्रह। कमल अपनी कविताओं के माध्यम से वरावर इस आवश्यकता पर वल देते हैं कि हम अपनी उन दुर्बलताओं पर ध्यान दें, जिनके कारण मातृ-भूमि मणिपुरी श्रीहीन हो गई है और उस पर विदेशी लोगों का आधिपत्य स्थापित हो गया है। कमल की यह चेतना हिन्दी के भारतेन्दु की चेतना से मेल खाती है।

नव-जागरण मूल रूप से राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के गर्भ से जन्मा था, इसीलिए वह विचारधारा पहले था साहित्य वाद में। भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी नव-जागरण विचारधारा बन कर ही आया। यदि वह विचार के रूप में न आता तो साहित्य में युगान्तकारी परिवर्तन उपस्थित न कर पाता और न काव्य को जन-चेतना का वाहक ही बना पाता।

मणिपुरी साहित्य में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में नव-जागरण का जो विस्फोट हुआ, वह पूरी तरह राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ा हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन सन्दर्भों का सम्बन्ध सन् 1833 से है। इस वर्ष ब्रिटिश सरकार द्वारा रखे गए प्रस्तावों को महाराजा गम्भीर सिंह ने स्वीकार किया। ऊपर से देखने पर अंग्रेजों के ये प्रस्ताव केवल व्यापार और सैन्य-सहयोग के लिए थे, इनमें ऐसा कुछ नहीं लगता था, जिससे मणिपुरी की स्वतन्त्र-सत्ता को आघात पहुँचता हो, किन्तु इनकी मूल भावना भविष्य में राजनैतिक हस्तक्षेप की भूमिका तैयार करने से सम्बन्धित ही थी। अंगरेजों ने बुद्धिमत्तापूर्वक अपने और म्यामां (बर्मा) के बीच मणिपुर को स्वतन्त्र राज्य के रूप में मान्यता दे दी थी[1], जबकि उस देश के साथ संभावित संघर्ष की दशा में मणिपुर पर अपना साथ देने की शर्त भी लाद दी थी। ठीक दो वर्ष बाद यह आशंका सत्य सिद्ध हुई। सन् 1835 में अंगरेजों ने मणिपुर में अपना पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त कर दिया। प्रारम्भ में यह भी दर्शाया गया कि अंगरेजों के प्रतिनिधि का कार्य किसी प्रकार का राजनैतिक हस्तक्षेप न होकर सामान्य हितों की रक्षा करना है, किन्तु सन् 1851 तथा 1852 की सरकारी घोषणाओं के बहाने पोलिटिकल एजेण्ट की शक्तियों व उत्तदायित्वों में बढ़ोत्तरी कर दी गई। दबंग अधिकारियों

ने अनेक शक्तियाँ अपने व्यक्तित्व और चालाकी के बल पर अर्जित कर लीं। कुछ वर्षों बाद मणिपुर में कोई ऐसी महत्वपूर्ण घटना नहीं रह गई, जिसमें पोलिटिकल एजेण्ट का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हाथ न हो।[2] अंगरेजों का वास्तविक चरित्र सन् 1891 में पूरी तरह सामने आ गया। तत्कालीन ब्रिटिश भारत सरकार ने श्री कुलचन्द्र को मणिपुर का महाराजा मानने के लिए तीन शर्तें रखीं— 1. पोलिटिकल एजेण्ट को तीन सौ सिपाही रखने की अनुमति मिले, 2. महाराजा मणिपुर का प्रशासन पोलिटिकल एजेण्ट की सलाह से चलाएँ और 3. टीकेन्द्रजीत को देश निकाला देने के लिए महाराजा सहमत हों तथा इस सन्दर्भ में ब्रिटिश-सरकार की सहायता करें।[3] इन शर्तों को मनवा कर अंगरेजी सरकार का हित साधन करने के लिए असम का चीफ कमिश्नर क्विन्टन बड़ी तैयारी के साथ 22 मार्च 1891 को इम्फाल पहुँचा।

इसके बाद की कहानी मणिपुर की स्वाधीनता के सूर्यास्त की कहानी है। मणिपुर के महान वीर पाओना व्रजवासी ने अपने चार सौ योद्धा सैनिक साथियों के साथ 23 अप्रैल 1891 के दिन खोङजोम नदी के किनारे वाली पहाड़ी पर साधन सम्पन्न अंगरेजी सेना से लोहा लेते हुए वीरगति प्राप्त की, 27 अप्रैल 1891 को मणिपुर की राजधानी पर 'यूनियन जैक' फहराया गया, टीकेन्द्रजीत वीर सिंह एवं थाङगाल जनरल को गिरफ्तार कर लिया गया, 13 अगस्त 1891 को इन दोनों इतिहास पुरुषों को इम्फाल नगर के पोलो ग्राउण्ड में फाँसी पर लटका दिया गया और इसके बाद मणिपुर अंगरेजी के विशाल उपनिवेशी साम्राज्यवाद का छोटा सा भाग बन गया। मणिपुर को अपने अधीन करने की अंगरेजों की लिप्सा इतना विकृत रूप धारण कर चुकी थी कि उन्होंने टीकेन्द्रजीत पर मुकदमा चलते समय उस वीर की—कछार से किसी योग्य विधिवेत्ता को बुलाने सम्बन्धी, प्रार्थना को ठुकरा दिया।[4] उन्हें डर था कि ऐसी अनुमति देने पर वे टीकेन्द्रजीत सिंह को फाँसी नहीं दे पाएंगे। उन्होंने कानून की जानकारी न रखने वाले जानकीनाथ बसाक नामक व्यक्ति को मुकद्दमे की पैरवी की अनुमति दी। बसाक की योग्यता इतनी थी कि वह टूटी-फूटी अंगरेजी बोल सकता था। अंगरेजों ने टीकेन्द्रजीत वीर सिंह और थाङगाल जनरल को विद्रोही कह कर फाँसी पर लटकाया। उनसे भी पहले वे 15 मई 1891 को इसी आरोप में निरंजन सूबेदार तथा मिया सिंह को फाँसी दे चुके थे।[5] उन पर आरोप था कि 'थौबाल' नामक स्थान पर अंगरेजी सैन्य टुकड़ी पर किया गयाआक्रमण एक विद्रोही कार्यवाही थी।[6] जिसका नेतृत्व उन दोनों ने किया था।

प्रश्न यह है कि टीकेन्द्रजीत वीर सिंह, थाङगाल जनरल या फिर निरंजन सूबेदार और मिया सिंह ने किसके विरुद्ध विद्रोह किया था ? उन्होंने सचमुच विद्रोह किया था या वे सब अपनी मातृ-भूमि की स्वतंत्रता की रक्षा कर रहे थे? वस्तुतः खोङजोम युद्ध मणिपुरी की राजनैतिक स्वाधीनता की रक्षा का आखिरी प्रयास था और उस समूचे घटना चक्र में अंगरेज, आक्रमणकारी से अधिक कुछ नहीं थे। इसके बावजूद आक्रान्ताओं ने राज्य के रक्षकों को विद्रोही कह कर पुकारा और शक्ति के बल पर मनमानी की। और तो और उन्होंने टीकेन्द्रजीत तथा थाङगाल को फाँसी देते समय मणिपुर की प्राचीन परम्परा का सम्मान तक नहीं किया। मणिपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में फाँसी वाली घटना इन शब्दों में दर्ज है— 'पोलो ग्राउण्ड में टिकटी को सीधा खड़ा किया गया तथा निर्देशानुसार फाँसी लगाई गई। जहाँ तक दृष्टि जाती थी मैदान सफेद वस्त्रधारी स्त्रियों से भरा था। राजा के समय यदि मृत्यु दण्ड पाए किसी अपराधी के बचाव के लिए काफी

संख्या में स्त्रियाँ आ जाती थीं तो प्रायः उसका प्राण दण्ड स्थगित हो जाता था। अब भी इसी आशा में हजारों की संख्या में स्त्रियाँ एकत्र हो गईं कि शायद पुरानी परिपाटी को बरकरार रखा जाए। किन्तु जैसे ही तख्ता गिरा और सेनापति और तांखुल जनरल परलोक सिधारे, एकत्रित जन-समुदाय के हृदय में गहरी कराह निकली।[7] इस सबको ध्यान में रखते हुए इतिहासकारों का यह निष्कर्ष अनुचित नहीं है कि मणिपुर के सन्दर्भ में अंग्रेजों ने पूरी तरह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले सिद्धान्त को व्यवहार में उतारा।[8]

पराधीनता के इस व्योरे के साथ ही उन कारणों पर दृष्टि डालना भी आवश्यक है, जो इस पतन के लिए वास्तविक रूप से उत्तरदाई है। खोङजोम का युद्ध जिस प्रकार लड़ा गया और जिस प्रकार तत्कालीन शासक वर्ग पारस्परिक भ्रम एवं वैमनस्य के कारण अनिर्णय की स्थिति में पड़ा रहा उससे यह स्पष्ट है कि खोङजोम की हार सैन्य बल की हार से अधिक शासकों के नैतिक बल और मणिपुरी लोगों के सामाजिक सांस्कृतिक साहस की पराजय थी। यदि इतिहास में थोड़ा सा पीछे जाएँ तो पता चलता है कि मणिपुरी लोग हमेशा एकजुट होकर राज्य की रक्षा के लिए शास्त्र धारण करते रहे हैं। यहाँ बिन्थोइङम्बी जैसी वीरांगनाएँ भी हुई हैं, जिन्होंने अकेले दम पर विद्रोहों को दबा कर राज्य की रक्षा की है। अपनी स्वतन्त्रता प्रियता के कारण मणिपुरी लोगों के 1857 के स्वाधीनता संग्राम से सक्रिय सहानुभूति रखने के प्रमाण भी मिलते हैं। थाङ्गाल जनरल को ऐसे लोगों में से एक बताया जाता है।[9] इतना होने पर भी खोङजोम का युद्ध सामूहिक भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सका। अकेले पाओना के बल पर थोड़ा सा प्रतिरोध हुआ और पराधीनता का अंधेरा चारों और फैल गया।

इस अंधेरे के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार शताब्दियों तक चलने वाली व्यक्ति केन्द्रित राजतन्त्रात्मक व्यवस्था थी। यह प्रणाली कभी भी जन कल्याण पर आधारित नहीं हो सकती। इसके नियामकों ने बराबर यह प्रयास किया है कि जनता राजा को देवांश मानती रहे, उसके प्रति पूजनीय भाव बनाए रहे और उसके कार्यों को विवाद से परे मानती रहे—अर्थात् राजतन्त्र में सत्ता केन्द्र के चारों ओर एक कृत्रिम प्रभामण्डल खड़ा किया जाता रहा है। किन्तु इस सत्य से कौन इन्कार करेगा कि राजतन्त्र अन्ततः जनता के भावनात्मक शोषण पर आधारित होता है। जब सत्ता का असली चेहरा सामने आ जाता है तो जनता में आक्रोश और निराशा का भाव उत्पन्न होता है। मणिपुर में यही देखने में आया। विभिन्न कारणों से यहाँ राजा और जनता के सम्बन्ध मधुरता से कटुता की ओर बढ़े। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तब मिला जब पामहैबा (महाराजा गरीबनिवाज) ने शान्तिदास गोसाई के प्रभाव में वैष्णव मत को राजधर्म घोषित किया और जनता ने तत्कालीन राजगुरु खोङनाङ थाबा के नेतृत्व में विरोध का स्वर ऊँचा किया। यद्यपि राजा के प्रति सदियों से चली आ रही अन्ध भक्ति के कारण काफी लोगों ने वैष्णव मत स्वीकार कर लिया किन्तु यह एक कटु सत्य है कि उस समय राजा द्वारा किया गया वह कार्य आवांछित धार्मिक व सांस्कृतिक हस्तक्षेप था। स्मरणीय है कि गरीबनिवाज ने मणिपुरी भाषा और प्राचीन लिपि (मीतै मयेक) का प्रयोग वर्जित कर दिया था, जतना पर बंगला भाषा व लिपि लाद दी थी, 'हियाङ तान्नबा' जैसे परम्परागत पर्व-खेल प्रतिबन्धित कर दिए थे और मणिपुरी लोगों के विश्वास के अनुसार प्राचीन पुराण ग्रन्थ जलवा कर नष्ट करने का प्रयास किया था। यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इससे राजतन्त्र के तमाम दबावों और प्राण दण्ड के

भय के बावजूद जनता के मन में सत्ता के प्रति स्थायी दरार अवश्य पड़ी होगी। मणिपुर के किसी भी गाँव में यह किंवदन्ती सुनी जा सकती है कि दैवीय प्रभाव के कारण अनेक पुराण ग्रन्थ आग से उड़ कर इधर-उधर चले गए थे, इसी कारण वे बच गए। गाँवों में इस प्रकार के परिवार भी देखने में आते हैं, जिनके यहाँ पुराने कुछ ग्रन्थ हैं। वे इन ग्रन्थों को किसी को नहीं दिखाते। स्वयं भी उन्हें कुछ विशेष अवसरों पर ही खोल कर देखते हैं। उसके लिए भी विस्तार पर मसटरी लगा कर एकान्त बनाते हैं। मान्यता है कि यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो देवता का शाप लगेगा। इस किंवदन्ती और अन्धविश्वास का रहस्य सिर्फ इतना है कि वे ग्रन्थ सिपाहियों के माध्यम से या अन्य किसी स्रोत से दूर गाँवों में पहुँच गए थे और राजा तक सूचना पहुँचने से रोकने के लिए लोगों ने उनकी सुरक्षा हेतु कुछ मान्यताएँ गढ़ ली थीं। यदि ग्रन्थ रक्षा जलाने वाली घटना ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण पूरी तरह निराधार भी है तो इतना तो सत्य है ही कि वैष्णव मत के राजधर्म घोषित होते ही जनता ने अपने प्राचीन धर्म और पुराण साहित्य पर खतरा अनुभव किया होगा, तभी उसने ग्रन्थ रक्षा के उपाय किए होंगे। भाषा और लिपि पर प्रतिबन्ध से राजतन्त्र का जनता के प्रति व्यवहार भी समझ में आ ही जाता है। इससे जनता के मन में राजा, राजतन्त्र और राज्य के सम्बन्ध में पहले से भिन्न अनुभूतियों ने जन्म लिया होगा।

वैष्णव मत के सामाजिक भेद-भाव और कर्मकाण्ड प्रधान व्यवहार ने भी जनता की सजगता को मन्द ही किया। जो लोग पहले तलवार चलाने में दक्षता प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य मानते थे, वे राधा-कृष्ण की रास लीला और नट-संकीर्तन में कुशलता प्राप्त करने लगे। वैष्णव मत के प्रचार से माधुर्य भक्ति, छापा-तिलक और संगीत इस सीमा तक जीवन का अंग बन गया कि जनता की सामाजिक और राजनैतिक चेतना सुप्त होती चली गई। परम्परागत राज्य-सत्ता के लिए यही हितकर भी था। कालान्तर में राजन्य-वर्ग भी पूरी तरह कर्मकाण्ड में डूब गया। इससे उसे धार्मिक प्रजा की श्रद्धा तो प्राप्त हुई, किन्तु भीतर ही भीतर वह अनेक बुराइयों का शिकार होने के कारण राज्य की उन्नति और रक्षा करने में अक्षम होता चला गया। यह धार्मिक कर्मकाण्ड के कारण उत्पन्न भ्रम, मोहग्रस्तता और दायित्वहीनता की संकटपूर्ण स्थिति थी, जिसके कारण धार्मिक जुलूसों में अद्भुत निकटता व स्वस्थ संवाद का अभाव था। परलोक की चिन्ता जितनी बढ़ती जाती थी, इहलोक का विवेक उतना ही कम होता जाता था। यह दशा पहले से ही मणिपुर को खोङ्जोम की हार की ओर ले जा रही थी।

उसी निराशा व दायित्वहीनता की स्थिति में अंगरेजों ने मणिपुरी समाज पर सांस्कृतिक आक्रमण किया। इसका एक उदाहरण है मणिपुर में अंगरेजी शिक्षा के लिए पहले स्कूल का खोला जाना। अंगरेज पोलिटिकल एजेंन्ट जॉन्स्टन इस विचारधारा का था कि मणिपुर में अंगरेजी साम्राज्य की स्थापना और उसे बनाए रखने के लिए यहाँ अंगरेजी शिक्षा का प्रचार आवश्यक है। उसी से मनोनुकूल कर्मचारी उपलब्ध हो सकते थे, ईसाई धर्म का प्रचार हो सकता था और परम्परागत विचारों पर अंगरेजी विचारधारा का प्रभुत्व स्थापित किया जा सकता था, अतः जॉन्स्टन को बहुत दिनों तक सफलता नहीं मिली। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। जैसे ही मणिपुर राजदरबार के कुछ अधिकारी अपनी पद-उपाधियों की स्वीकृति के लिए जॉन्स्टन के पास गए, उसने बदले में एक अंगरेजी माध्यम स्कूल की स्थापना की शर्त सामने रख दी। वे

अधिकारी थोड़े से संकोच के बाद शर्त मानने और उसके अनुसार कार्य करने को तैयार हो गए। उन्हीं के प्रयास से सन् 1835 में मणिपुर में एक मिडिल इंग्लिश स्कूल स्थापित हो गया।[10] आगे चल कर अंगरेजी शिक्षा के परिणाम चाहे जितने अच्छे रहे हो किन्तु सत्य यही है कि ब्रिटिश अधिकारी केवल अंगरेजी हितों के लिए अंगरेजी शिक्षा का प्रचार करना चाहते थे। उनका उद्देश्य शिक्षा को सांस्कृतिक आक्रमण का हरावल दस्ता बनना मात्र था। उन्हें इसमें सफलता भी मिली। अपनी सैन्य शक्ति के बल पर अंगरेज मणिपुरी शासकों के भाग्य-विधाता बनने और उन्हें मणिपुरी जनता के विरुद्ध अपने पक्ष में खड़ा करने में पहले ही सफल हो गए थे, अपने सांस्कृतिक आक्रमण के बल पर वे यह सिद्ध करने में भी काफी सफल हों गए कि मणिपुरी समाज के पास न तो समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, न गरिमापूर्ण साहित्य और वैज्ञानिक चिन्तन-दृष्टि। जितनी अंगरेजी शिक्षा बढ़ती गई उतनी ही यह भ्रामक धारणा भी बढ़ती गई। इसलिए यह कटु यथार्थ स्वीकारना ही होगा कि अंगरेजों को खोङजोम युद्ध में जो सैनिक विजय मिली थी उसकी शुरूआत सांस्कृतिक मोर्चे पर बहुत पहले ही हो गई थी।

किन्तु जैसे 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की असफलता ने सम्पूर्ण भारत में वैचारिक नव-जागरण और सामाजिक-राजनैतिक चेतना का ज्वार ला दिया था ठीक वैसे ही 1891 के खोङ्जोम युद्ध की हार ने मणिपुरी समाज को झकझोर दिया। यह प्रश्न ज्वालामुखी के लावे की तरह उबलने लगा कि अपनी ही निर्बलताओं के कारण मणिपुर दासत्व के जिए गहरे खड्ड में जा गिरा है उससे कैसे निकला जाए? भारतेन्दु को भी इसी प्रश्न ने समग्र भारतीय समाज के सन्दर्भ में झिंझोड़ा था और उन्होंने निर्णय दिया था कि सामाजिक, आर्थिक, वैचारिक तथा भाषायी दासता को समाप्त किए बिना अंगरेजों द्वारा थोपी गई राजनैतिक दासता से मुक्ति पाना असंभव है। मणिपुरी समाज ने भी ठीक यही निर्णय किया। इस बिन्दु पर मणिपुर और तत्कालीन भारत के स्वाधीनता संघर्ष के बीच भावनात्मक सम्बन्ध की कल्पना मात्र नहीं कही जाएगी। इतिहासकारों के अनुसार टीकेन्द्रजीत और थाङ्गाल की फाँसी ने बंगाल के क्रान्तिकारियों में हलचल मचा दी। जिस प्रकार इन इतिहास-पुरुषों ने अपने राज्य की रक्षा के अपने प्राणों की बलि चढ़ाई उससे भारतीय क्रान्तिकारियों ने बहुत प्रेरणा प्राप्त की। इस कार्य में अंगरेजों के एक निर्णय ने भी अप्रत्यक्ष रूप से योग दिया। उन्होंने टीकेन्द्रजीत और थाङ्गाल की फाँसी के बाद कुलचन्द्र तथा अङौसना को पहली अलीपुर केन्द्रीय कारागार (कलकत्ता) एवं बाद में अण्डमान भेज दिया।[12] ये दोनों ही स्थान ऐसे थे, जहाँ मणिपुर के स्वाधीनता संघर्ष की कहानी बंगाल सहिता भारत के अन्य स्थानों के लोगों तक पहुँचनी स्वाभाविक थी। इस प्रकार स्वतन्त्रता संघर्ष की असफलता के बावजूद मणिपुरी समाज समग्र भारतीय राजनैतिक व सामाजिक चेतना के सम्पर्क में आया तथा उसने यह अनुभव किया कि सामाजिक परिवर्तन के लिए अपेक्षित प्रयास के अभाव में राजनैतिक लक्ष्य प्राप्त करना कठिन है। यह एक प्रकार से आधुनिक दृष्टि का प्रारम्भ बिन्दु था।

यहाँ एक तथ्य पर ध्यान देना होगा। परिस्थितियों के प्रभाव से मणिपुरी समाज में जो परिवर्तन आया उसने आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता प्रतिपादित की तथा उसके परिणाम स्वरूप यहाँ परम्परागत सामाजिक मूल्य बदलने शुरू हुए। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इम्फाल में कुछ ऐसे क्लब बन गए थे, जिनमें तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं पर वाद-विवाद

प्रतियोगिताएँ होती थीं और सार्वजनिक उत्सवों के अवसर पर गाए जाने वाले अश्लील गीतों का विरोध किया जाता था। उन्हीं दिनों अंगरेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार का वातावरण बना था और तभी स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। थोकचोम मधु सिंह जैसे समाज सेवी घर-घर जाकर लोगों को इस बात के लिए राजी करने लगे थे कि वे अपनी लड़कियों को स्कूल भेजना प्रारम्भ करें। व्यक्तिगत स्तर पर हिन्दी प्रचार आन्दोलन भी उन्हीं दिनों अस्तित्व में आ गया था। हिन्दी का सर्व प्रथम विद्यालय थोकचोम मधु सिंह के घर पर ही खुला था। विभिन्न दिशाओं में ये परिवर्तन बड़ी तीव्र गति से घटे। अनेक लोगों ने मणिपुर से बाहर गुवाहाटी, डिब्रूगढ़, कलकत्ता, वाराणसी आदि स्थानों पर जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करनी प्रारम्भ की। इससे नए विचारों की हवा मणिपुर की ओर बहने लगी। सन् 1920 में गुवाहाटी, सिल्हट और डिब्रूगढ़ नगरों में शिक्षा प्राप्त करने वाले मणिपुरी छात्रों ने एक हस्तलिखित साहित्यक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया था। इसके बाद सन् 1924 में मणिपुर से बाहर नौकरी आदि के लिए रहने वाले लोगों ने 'जागरण' नामक एक पत्रिका प्रारम्भ कर दी थी। ये प्रयास उन सजग लोगों द्वारा किए गए थे, जो मणिपुर को सामाजिक रूढ़ियों के साथ-साथ राजनैतिक बन्धनों से भी मुक्त करना चाहते थे और जिनका लक्ष्य आधुनिक विचारों का स्वागत करके उनकी प्रचार करना था।

मणिपुर से बाहर रह कर मणिपुरी समाज को नई दिशा देने वाले लोगों से प्रेरणा लेकर यहाँ रहने वाले सजग व्यक्ति भी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में आगे आए। इस दिशा में पहला प्रयास हिजम एरावत ने किया। उन्होंने 'मीतै चनु' नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित करके साहित्यिक हलचल को जन्म दिया। सन् 1930 में इम्फाल से 'ललित मंजरी' पत्रिका प्रकाशित हुई इसके बाद द्वितीय विश्व युद्ध आने तक मणिपुर में अनेक पत्रिकाएँ निकलने लगीं। इनमें 'याकाइरोन', 'मणिपुर साहित्य परिषद पत्रिका' 'तरूण मणिपुरी' 'मणिपुर मतम' और 'नहारोल' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन पत्रिकाओं ने साहित्यिक वातावरण का निर्माण तो किया ही, एक वैचारिक क्रान्ति को भी जन्म दिया। इनमें जो सामग्री प्रकाशित होती थी, वह साहित्य और कला सम्बन्धी मूल्यों के साथ ही तमाम विचारधाराओं की जानकारी से भी भरी होती थीं। सबसे बड़ी बात तो यह कि इन पत्रिकाओं के माध्यम से स्वतन्त्रता और मानवतावाद से प्रेरित रचनाएँ प्रकाशित होती थीं, जिनका सम्बन्ध साहित्य से भी अधिक तत्कालीन जीवन के अन्य पक्षों से था।

वैचारिक क्रन्ति और आधुनिक विचारधारा का प्रचार करने में मुद्रण सुविधा के सहयोग को भी नहीं भुलाया जा सकता। मणिपुर में मुद्रण युग का प्रारम्भ सन् 1910 में हुआ। उस वर्ष मकर सिंह, मुनाल, हाउदैजाम्बा चैतन्य और सनाजाओबा ने मिलकर एक प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की। मुख्यतः इस प्रेस की स्थापना पाठ्य पुस्तकों के मुद्रण के लिए की गई थी, किन्तु इसमें अन्य प्रकार की छपाई को कैसे रोका जा सकता था ? फलतः छपाई मशीन की पहली गड़गड़ाहट ने समर्थ और दूरगामी प्रभाव रखने वाले संवाद की संभावनाओं के द्वारा खोल दिए। शनैः शनैः इसके सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव प्रकट होने लगे।

परिवर्तन के उसी दौर में सामन्ती प्रभाव वाली सामांजिक और राजनैतिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह उठ खड़ा हुआ। यह झण्डा हिजम एरावत सिंह ने उठाया। उनका जन्म 30 सितम्बर 1896 को इम्फाल में हुआ था। वे बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे, अतः जैसे जैसे बड़े हुए उनके

मन में अपने समाज के लिए कुछ करने की इच्छा बलवती होती गई। सन् 1924 में उन्होंने कलकत्ता में महात्मा गाँधी के जेल से छूटने के अवसर पर आयोजित एक विशाल जन-सभा में भाग लिया। वहीं से उन्हें अपने लिए कार्य-दिशा निर्धारित करने की प्रेरणा मिली। सन् 1927 में जब उन्हें मणिपुर के महाराजा द्वारा मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया तो उन्होंने 'फ्यूडल-सिस्टम' का विरोध करने का निश्चय कर लिया। हिजम एरावत सिंह केवल सरकारी अधिकारी ही नहीं थे, बल्कि उनका विवाह भी चूड़ाचाँद महराजा की भतीजी से हुआ था, फिर भी उन्होंने लोगों से मिल कर उनकी वास्तविक समस्याओं को समझना और समाजार्थिक विकास के लिए कार्य करना शुरू किया। उन्होंने 30 मई 1934 को 'निखिल हिन्दू मणिपुरी महासभा' का गठन किया और तत्कालीन महाराजा के नियन्त्रण में संचालित प्रतिक्रियावादी धार्मिक संस्था 'ब्रह्म सभा' की कार्य पद्धति का विरोध किया। मणिपुर के इतिहास में यह पहला अवसर था जब राजा की निर्विरोध सत्ता को सफलतापूर्वक चुनौती दी गई।[13] एक प्रकार से सामन्तवाद के टूटने और मणिपुरी समाज के नयी खुली हवा में साँस लेने की घोषणा थी। यहाँ सामन्तवाद के सफल विरोध के इस प्रभाव का उल्लेख करना भी संगत होगा कि 'निखिल हिन्दू मणिपुरी महा सभा' सन्1938 में 'निखिल मणिपुर महासभा' के रूप में बदल गई और राजनैतिक उद्देश्यों के लिए कार्य करने लगी।[14]

उस काल के स्वरूप का निर्धारण करने में बंगला, संस्कृत, मैथिली, असमीया आदि भाषाओं से मणिपुर के सम्पर्क की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। वैष्णव मत के मणिपुर पहुँच कर राजधर्म बनने की घटना और उसके कुछ अप्रिय परिणामों को छोड़ दें तो पता चलेगा कि इस धार्मिक यात्रा के विद्यापति, जयदेव और बंगला के भक्त कवियों को बहुत सारा धार्मिक साहित्य मणिपुर पहुँचा। इसी के साथ बंकिम, शरत, रवीन्द्र का साहित्य भी यहाँ पहुँचा। बंगला-भाषा के शिक्षा का माध्यम बन जाने के कारण बंगला लेखकों के साहित्यक को समझना आसान था। दूसरे अनेक लोग बंगाल में शिक्षा प्राप्त करते समय वहाँ के साहित्य के निकट सम्पर्क में आते थे। बंगला जानने वाले लोग मणिपुरी भाषा में बंगला की रचनाओं का अनुवाद भी करते थे। हवाइबम नवद्वीपचन्द्र ने माइकेल मुधुसूदन दत्त के 'मेघनादवध काव्य' के प्रथम सर्ग का अनुवाद 'मेघनाद तूबा काव्य' शीर्षक से किया था। उन्होंने ही 'गीतांजलि' के कुछ गीतों का मणिपुरी अनुवाद भी किया था। इसी प्रकार अ. श्यामसुन्दर सिंह ने बंकिमचन्द्र की रचना 'कपाल कुण्डला' का मणिपुरी में अनुवाद किया था। संस्कृत से मणिपुर का सम्पर्क और भी पुराना था, क्योंकि वह भाषा-उत्तर भारत पर मुस्लिम आक्रमण के कारण, ब्राह्मणों के प्रव्रजन के साथ यहाँ पहुँच गई थी। संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद भी काफी पहले प्रारम्भ हो गया था। बीसवीं शताब्दी में वसुदेव शर्मा ने कालिदास के महान् साहित्यिक ग्रन्थ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का मणिपुरी भाषा में अनुवाद किया। असमीया भाषा से भी मणिपुर का निकट सम्पर्क रहा है। शिक्षा के लिए जो लोग असम प्रान्त के विभिन्न नगरों में जाते थे वे अनायास ही लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, हेमचन्द्र गोस्वामी, चन्द्रकुमार आगरवाला आदि के साहित्य के सम्पर्क में आ जाते थे और उससे प्रेरणा ग्रहण करते थे। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि मणिपुरी भाषा की पहली पत्रिका असम से ही प्रारम्भ हुई थी। साथ ही कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो अपने लेखन की प्रेरणा अपने असम प्रवास को देते हैं और असमीया साहित्य का ऋण

स्वीकार करते हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में मणिपुरी जीवन में जो नव-जागरण आया, उसकी पृष्ठभूमि विशाल, व्यापक, जटिल और विविधवर्णी थी। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि नव-जागरण अंगरेजी शिक्षा, साहित्य और पश्चिमी (विशेषतः यूरोपीय) समाज से मुक्त सम्पर्क की सुविधा के फलस्वरूप प्रस्फुटित हुआ, किन्तु इस विश्वास को नव जागरण का एकमात्र आधार मान लेना बहुत बड़ा भ्रम है। पश्चिम का सम्पर्क नव-जागरण को प्रेरित करने वाला छोटा सा तत्व है इसके वास्तविक और कहीं अधिक बड़े कारण कुछ दूसरे हैं। नव जागरण के सन्दर्भ में उस हलचल पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है, जिसका उदय अंगरेजों द्वारा राजनीति की आड़ में धार्मिक और सांस्कृतिक आक्रमण के कारण हुआ था। यदि थोड़ा गहराई में जाने का प्रयास करें तो पाएँगे कि जन कल्याण की तमाम घोषणाओं के बावजूद अंगरेजों ने मणिपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति को पराजित बनाए रखने के हर संभव प्रयास किए। उनके इस कदम की प्रतिक्रिया नव जागरण लाने वाला महत्वपूर्णस्रोत बनी। दूसरे, पश्चिम से कहीं अधिक आस-पास के क्षेत्रों में बहने वाली स्वतन्त्रता, मुक्ति और आधुनिकता की हवा ने जागरण की चिंगारी को विशाल ज्वाला में बदलने का काम किया। इस प्रकार मणिपुरी समाज में नव जागरण मात्र अंगरेजी शिक्षा अथवा पश्चिमी सम्पर्क की देन नहीं थी, बल्कि उसका विकास स्वाभाविक रूप से उत्पन्न आत्म-चेतना और परिवेश में होने वाली सामाजिक सांस्कृतिक हलचल से समाज के सचेत सम्पर्क के कारण हुआ था।

कमल, चाओबा, अङाङ्हल, मयुरध्वज, नवद्वीपचन्द्र आदि महान नव जागरणकालीन कवियों के साहित्य में इस आत्म-चेतना और सामाजिक सांस्कृतिक हलचल के दर्शन आसानी से किए जा सकते हैं। कमल की कविताओं के अतिरिक्त उनकी कहानी 'ब्रजेन्द्रगी लुहोङ्बा' (ब्रजेन्द्र का विवाह) में सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति की छटपटाहट को अभिव्यक्ति मिली है। चाओबा के निबन्धों में सामाजिक सांस्कृतिक आदर्शों के साथ ही नवीन शैली के निर्माण का आग्रह दिखाई देता है। अङाङ्हल द्वारा संचालित रंग आन्दोलन पूरी तरह सांस्कृतिक प्रभाव से मुक्ति का प्रयास था। मयुरध्वज की कविताएँ गहरे इतिहास बोध का परिचय देती हैं और नवद्वीपचन्द्र का अनुवाद कर्म साहित्यिक समृद्धि के प्रयास की गवाही देता है। नवजागरण के अन्य कवियों मीनकेतन, दरेन्द्रजीत और शीतलजीत में भी ये विशेषताएँ नूतन रूप में उपलब्ध हैं। वस्तुतः नवजागरण के प्रारम्भिक कवियों ने सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना की एक लहर उत्पन्न कर दी थी,[15] जो आगे आने वाले कवियों की रचनाओं में बढ़ती गई।

मणिपुरी साहित्य में नव जागरण का पहला स्तर स्व-भाषा और जातीय साहित्य सम्बन्धी चेतना के रूप में प्रकट हुआ। कवि कमल ने मणिपुरी भाषा की दुर्दशा पर आँसू बहाते हुए कहा—

जान गया माँ, तुम ही हो निर्धन पुष्प
भारत की इस वाटिका में
देखो माँ तुम्हारे अज्ञानी पुत्र
न चढ़ा जल चरणों पर तुम्हारें
प्रयासरता हैं खोदने को पोख मरू-भूमि में

कर रहे पीछा पकड़ने को माया मरीचिका का

(लमाबम कमल)

यहाँ इस तथ्य पर ध्यान जाना चाहिए कि कवि ने भारत को विभिन्न भाषाओं की वाटिका के रूप में कल्पित किया है और यह माना है कि उस वाटिका में अन्य समस्त पुष्प श्रीसम्पन्न हैं, केवल मणिपुरी भाषा का पुष्प ही श्रीहीन और निर्धन दिखाई दे रहा है। कवि ने यहाँ बड़ी कुशलता से भाषा की दुर्दशा का चित्रण कर दिया है। उसने यह संकेत भी कर दिया है कि मणिपुरी भाषा की यह श्रीहीनता उन लोगों के कारण है, जिनके लिए स्व-भाषा का कोई अर्थ नहीं है। अतीत में ऐसे ही भाषा गौरव से हीन हैं, व्यक्तियों ने मणिपुरी भाषा और साहित्य की उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध किया था। अपनी भाषा के प्रति वे इतने निष्ठुर हो गए थे कि उन्होंने उसके प्रभाव को मिटाने के लिए अन्धविश्वासों तक का सहारा लेने में संकोच नहीं किया था।[16] नव जागरणकालीन कवियों ने ऐसे व्यक्तियों को बड़ी शालीनता से दर्पण के सामने खड़ा किया है—

दूसरों की गोद में बड़ी होने वाली
पराई भाषा पर आश्रित
माँ की शक्ल न पहचानने वाली
सन्तान है बेचारी

(अशाङ् बम मीनकेतन सिंह)

नवजागरणकाल में स्व-भाषा प्रेम हिलोरे लेने लगा। अपनी मातृभाषा को लम्बे समय बाद पुनर्गौरव प्रदान करने का श्रेय महाराज चूडाचाँद को दिया जाता है। उन्होंने 30 अप्रैल 1925 को राजमहल में मणिपुरी भाषा में नाटक खेलने की व्यवस्था की।[17] जिस राज्य-सत्ता ने मातृ-भाषा को एक समय पददलित बना दिया था उसी के एक वंशज ने अपने पूर्वजों की त्रुटि को सुधारा और भाषा को उसका उचित गौरव दिया। नवजागरणकालीन कवि इस घटना से फूले नहीं समाए—

बहुत दिन पश्चात
पधारी है माँ मैतै चनु
मैतै साहित्य मन्दिर में
भर कर चंगेरी पुष्पों से
करें अर्पित माँ के चरणों में

(लमाबम कमल)

भाषा और साहित्य सम्बन्धी इस चेतना के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए दो बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। एक तो यह कि नव जागरण कालीन कवियों के लिए 'भाषा' और 'साहित्य' न तो मात्र शब्द-कोश से जुड़े हुए शब्द थे और न कवि-कला की साधना के साधन भर थे। उनके लिए 'भाषा का अर्थ था एक ऐसी संरचना व्यवस्था, जिसमें कोई व्यक्ति और कोई समाज अपने 'स्व' को आत्मीयता के साथ अभिव्यक्त करता है तथा 'साहित्य' का अर्थ था अभिव्यक्ति का एक ऐसा वैशिष्ट्य भरा संसार, जिसके प्रत्येक अणु में व्यक्ति और समाज अपनी समूची जीवन प्रणाली तथा परम्पराओं के साथ उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार भाषा और साहित्य उनके लिए सांस्कृतिक शब्द थे, अतः इनकी मुक्ति का अर्थ राजनैतिक

मुक्ति से कहीं अधिक बड़ा कहीं अधिक गम्भीर था। दासता से मुक्त होने के लिए स्वभाषा और साहित्य की बन्धन-मुक्ति अनिवार्य थी।

इस सन्दर्भ में दूसरी बात यह है कि नव जागरण-काल में स्व-भाषा सम्बन्धी यह चेतना प्रकट हुई थी, उत्पन्न नहीं। भीतर ही भीतर वह बहुत पहले से चली आ रही थी। महाराजा गरीबनिवाज द्वारा मणिपुरी भाषा को प्रतिबन्धित करने वाली घटना के सन्दर्भ में हम देख चुके हैं कि साधारण पढ़ी लिखी जनता ने किस प्रकार अपने प्राचीन ग्रन्थों को बचाया। इसी सन्दर्भ में यह जान कर भी आश्चर्य होता है कि मणिपुरी भाषा पर प्रतिबन्ध लगाने के बावजूद इस भाषा में ग्रन्थों की रचना का क्रम बन्द नहीं हुआ। राज्य सत्ता के पूरे विरोध का सामना करते हुए स्वभाषा के प्रति अनुराग रखने वाले लोगों ने न केवल मणिपुरी भाषा में लिखा ही बल्कि उन्होंने प्राचीन लिपि (मीतै मयेक) का प्रयोग भी जारी रखा। भाषा व साहित्य की दृष्टि से संकट भरे उस काल में विविध विषयों की जानकारी रखने वाले लेखक इस तरह छिप कर ग्रन्थों की रचना करते थे कि उनके परिवार के किसी सदस्य को भी इस बात का पता न चले। ये ग्रन्थ हाथ से बने कागज पर हाथ से बनी स्याही और हाथ से बने कलम से लिखे जाते थे। लिखे जाने के बाद इन्हें बूढ़े पेड़ों के कोटरों या फिर पूरी सुरक्षा के साथ जमीन में गाड़ कर छिपा दिया जाता था। यह जानकारी बड़े रहस्यमय तरीके से किसी अन्य ग्रन्थ में अंकित कर दी जाती थी, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ उनकी खोज कर सकें।[18] आगे चल कर जब मणिपुरी भाषा का पुनरूद्धार हुआ, तब उन ग्रन्थों की खोज पर भी ध्यान दिया गया। पद्मश्री खेलचन्द्र सिंह ने इस खोज अभियान में विस्मयकारी सफलता प्राप्त की और सैकड़ों की संख्या में जगह-जगह दबी-छिपी पाण्डु-लिपियाँ उपलब्ध कीं।[19] कुछ और लोगों को भी ऐसे ग्रन्थों को उपलब्ध करने में सफलता मिली।

उस काल की ये पाण्डु-लिपियाँ ज्ञान के विविध क्षेत्रों से सम्बन्ध रखती हैं।[20] धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन से लेकर खगोल शास्त्र, गणित, वैद्यक, तन्त्र, कृषि, सामाजिक-मूल्य, साहित्य, युद्ध-शास्त्र तक इनमें समाया हुआ है। कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं, जो तत्कालीन शासकों के प्रति जनता की भावना का उद्घाटन करते हैं। राजा और राज कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों से उत्पन्न असन्तोष को साधारण जनता खुलेआम प्रकट नहीं कर पाती थी; उसे ही लेखक चुपचाप लिखते थे और छिपा कर रख देते थे। ये सही माने में सच्चे इतिहास-ग्रन्थ कहलाने योग्य हैं।

इस विवरण से यह आसानी से समझा जा सकता है कि मणिपुरी समाज में भाषा और साहित्य सम्बन्धी चेतना-धारा पिछले युगों में ही अस्तित्व में आ गई थी। बंगला भाषा और लिपि के प्रभुत्व के काल में मणिपुरी भाषा की धारा समय की रेत के नीचे भले ही चली गई हो, किन्तु वह रूकी नहीं नष्ट नहीं हुई, विरोधों और बाधाओं का सामना करते हुए धीरे-धीरे ही सही, आगे बढ़ती रही। नव-जागरण की वेला में जब भाषा और साहित्य की बेड़ियाँ एक ही झटके में टूट गईं, तब कवियों ने एक अनाम कवि का आह्वान इन शब्दों में किया–

अनुगूंज भरो कोकिल तुम आ पर्वतीय घाटी में
आ बनाओ इस घाटी को निकुंज
बनाओ प्रवहमान सूखी धारा चन्द्रनदी की

आह्वान करो इस बन में वीणापाणि का

(लमाबम कमल)

ऊपर से देखने पर यह आह्वान किसी कवि के प्रति है, किन्तु इस पुकार का वास्तविक सम्बन्ध साहित्य और भाषा की उस चेतना से है, जिसे पहले स्वदेशी राजतन्त्र ने और फिर अंगरेजी उपनिवेशवाद ने निष्प्रभ बनाने का प्रयत्न किया था। नवजागरण कालीन कवियों ने भाषा की-उसी षड्यन्त्र से, मुक्ति की घोषणा की तथा भाषा के स्वाभिमान को सामाजिक स्वाभिमान की व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित किया।

नव-जागरण काल में मातृ-भूमि की पीड़ा जैसे फूट पड़ी। उसने साहित्य जैसा समर्थ माध्यम पाकर जन-जन के पास पहुँचना चाहा। उसने प्रत्येक व्यक्ति को सूचित करना चाहा कि मणिपुर के गौरवशाली इतिहास की नदी पराधीनता और दुर्दिनों के झाड़ं-झंखाड़ से ढक गई है, आत्महीनता की कीचड़ चारों ओर फैल गई है, भयावह शून्य व्याप्त हो गया है और एक समय की तीव्रधारा केवल हृदय-प्रदेश में बहने को विवश हो गई है। कवि ने बहुत भावुक स्वर में कहा—

कारुणिक है चन्द्रनदी के समीप का दृश्य
जंगल में बदल गया है नदी तट भी
छा गई है घास भीतर भी
लेकिन प्रवहमान है धारा इतिहास की नीचे भूमि के।
तीव्र धारा उसकी एक समय
उखाड़ फेंकती थी तट के पेड़-पौधे
अब फाल्गु गंगा सी
जलधारा को छोड़ कर
गुप्त प्रदेश में हृदय के भीतर ही भीतर
प्रवहमान है दुख की धारा चुपचाप

(लमाबम कमल)

कवि की अभिव्यक्ति का एक-एक शब्द मणिपुरी समाज की पद-दलित स्थिति और प्राचीन गौरव की स्मृति के मध्य छिड़े द्वन्द्व से उत्पन्न पीड़ा को मूर्तिमान बनाने वाला है। यह वस्तुतः सम्पूर्ण नवजागरण कालीन साहित्य की पीड़ा है, जिसने रचनाकारों की दुरावस्था के कारणों की खोज करने और समाज को आधुनिक मूल्य अपनाने की प्रेरणा दी। इसी के प्रभाव से कवि ने पूरी शक्ति लगा कर कहा—

दुख हैं कह कर
निरन्तर
स्मरण करने से वृद्धि पाता है दुख
प्रभु का है शिवालय
क्षेत्र है कर्म का
लगाओ ध्यान कर्म में
जीवन संग्राम में

भुजा उठा लेने पर
कटेगा दुख अवश्य
आलसी तुम
जीवित रहते
भार हो अपने पर हम पर

(ख्वाइराकपम चाओबा)

कवि का यह धिक्कार लुहार के हथौड़े की चोट की भाँति हरेक की पीठ पर पड़ा जिसने व्यापक स्तर पर सामाजिक बोध और वैचारिक क्रान्ति को संभव बनाया। तब यह रहस्य खुलना शुरू हुआ कि अंगरेजी सत्ता ने स्थानींय राजा के राजनैतिक अधिकार छीन कर उसे केवल धार्मिक और धर्म के प्रभाव से सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित कर दिया था।[21] इसके परिणाम स्वरूप धीरे धीरे राजा और जनता के बीच सूक्ष्म दीवार खड़ी हो गई थी। और विदेशी शासकों को यह सुविधा मिल गई थी कि वे अपने आक्रान्ताचरित्र को भी न्यायोचित सिद्ध कर सकें। इसी के साथ यह पता भी चलने लगा था कि धार्मिक जनता की मोहान्धता और कोमल भावना का शोषण करने में स्वार्थी लोगों ने कोई कमी नहीं छोड़ी थी। एक प्रकार से कुछ शक्तिशाली व्यक्ति धर्म और धार्मिक संस्थाओं का दुरुपयोग अपने स्वार्थों को पूरा करने और अपने विरोधियों को दबाने में करते थे।[22] इसी कारण तत्कालीन समाज अनेक हानिकारक बेड़ियों में जकड़ गया था और व्यक्ति की स्वतन्त्रतापूर्वक जीने, यहाँ तक कि प्रेम करने तक की स्वतन्त्रता छीन ली गई थी।[23] रहस्य खुलने की यह श्रृंखला काफी लम्बी थी। इसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही प्रभावशाली हुई। साहित्य और समाज, दोनों में व्यापक स्तर पर वैचारिक परिवर्तन आया। कविता ही नहीं, कथा-साहित्य में भी नवीन वैचारिक संघर्ष और नवीन सामाजिक मूल्यों के निर्माण की व्याकुलता परिलक्षित होने लगी। हिजमअङाङ्हल की औपन्यासिक कृति 'जहेरा' में यही व्याकुलता आदर्श की चादर में लिपटी हुई है। इस रचना की नायिका जहेरा सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में तन कर खड़ी दिखाई देती है।[24] इससे पहले डॉ० कमल की एक मात्र कहानी 'ब्रजेन्द्रगी लुहोङ्बा' में भी पूरी सामाजिक व्यवस्था को झटका देने का प्रयास किया जा चुका था।

आधुनिक ज्ञान के प्रवेश और वैचारिक क्रान्ति ने ही नव-जागरणकालीन कवियों का ध्यान आपसी फूट की ओर भी दिलाया। उन्होंने आह्वान किया कि अपने आने वाले कल की भलाई के लिए हमें आपसी बैर-भाव को भुला देना चाहिए—

पक्षी अधिकांक्ष बिताने वाले रात वृक्षों पर
झगड़ते हैं, बिना बहुत सारे कारणों के परस्पर

□□□

बढ़ाओं मित्रता कल की भलाई हेतु
निर्बल पक्षी बचने का करो प्रयास हाथों से पक्षी के
मुँह में रखों दबा कर फल सुबह-शाम के लिए।

(हिजम अङाङ्हल)

कवियों का यह आह्वान उस समय के सामाजिक और राजनैतिक जागरण की गवाही

देता है। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवादियों की 'फूट डालो और राज करो' नीति का विरोध झलकता है।एकता और मित्रता का यह आह्वान अङाङ्हल के उपन्यास (जहेरा) में दो-टूक शब्दों में किया गया है। वे कहते हैं कि 'हम हिन्दू मुसलमान, भाई-भाई एकता के सूत्र में बंध कर एक दूसरे के क्रोध को शान्त करके और एक दूसरे की उद्दण्डता पर अंकुश लगा कर भारत माता के पैरों में पड़ी लोहे की जंजीर को तोड़ दें, जिससे बहुत दिनों से परतन्त्रता के कारागार में बन्दी भारत माता को स्वतन्त्रतापूर्वक चल सकने की शक्ति दे सकें। हम हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई भारतमाता को कंधे से कंधा मिला कर उठाने में पारस्परिक सहयोग भाव से जुटें।[25]' यहाँ इस तथ्य को उजागर करना आवश्यक है कि 'जहेरा' के रचना-काल में मणिपुर में हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धी साम्प्रदायकिता की समस्या नहीं थी। बहुत थोड़ी संख्या वाला मुस्लिम समुदाय यहाँ प्रेम और सौहार्द्रपूर्वक निवास करता था। (यह सम्बन्ध पिछले दो तीन सालों में ही भंग हुआ और सन् 1992 में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए) इस सौमनस्य के बावजूद अङाङ्हल ने हिन्दू-मुसलमान एकता और भारत माता की उन्नति के लिए मिल कर काम करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसके पीछे गांधीजी का प्रभाव और मध्य भारत में विद्यमान हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की समस्या थी। नव जागरणकालीन साहित्यकार दूरगामी प्रभाव की भूमिका समझ सकते थे, इसीलिए उन्होंने अपने समाज की रक्षा की पूर्व तैयारी प्रारम्भ कर दी थी।

यह एक विशेष प्रकार का राष्ट्रीयता-बोध था, जिसके विकास की पृष्ठभूमि थी समाज सुधार, मानवीयता, मैत्री का प्रयास और स्वार्थ व शोषण का विरोध। इसमें राष्ट्रीयता की परम्परागत अवधारणा बदल गई थी, क्योंकि यह स्पष्ट होने लगा था कि राष्ट्र-रक्षा और राष्ट्र-गौरव के नाम पर युद्ध करने को उतावला रहने या फिर बड़ी-बड़ी, किन्तु खोखली बातें करते रहने का नाम राष्ट्रीयता नहीं है, बल्कि उसका अर्थ है, मातृ भूमि का आर्थिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, सामाजिक समृद्धि और वैज्ञानिक विकास। नवजागरण कालीन कवियों ने यथार्थ के धरातल पर रहते हुए कहा

रहने वाले दूर या निकट
बड़े या छोटे
विचारें, मैतै-चनु की हैं सन्तान
टूट न जाए पुष्प माला
देश के पुत्रों, मातृ सेवकों
संजीवनी को स्वार्थ त्याग की
रोप दो चारों ओर मन्दिर के
करो कामना मैतै चनु की दीर्घायु की।

(लमाबम कमल)

कवि की यह मांग बड़ी साधारण थी किन्तु इसकी असाधारणता इस बात में है कि कवि ने 'स्वार्थ त्याग' को 'संजीवनी' का नाम दिया। इस अभिव्यक्ति में स्पष्ट संकेत है कि कवि मातृ भूमि की दुर्दशा का पहला कारण स्वार्थ की भावना को मानता है। तत्कालीन सन्दर्भ में नवजागरणकालीन कविता के इस यथार्थजीवी पक्ष को समझना आवश्यक है। इसी के बाद

कवि अज्ञानी और निरीह जनता के शोषण की ओर सबका ध्यान आकर्षित करता है। यहाँ भी यह साधारण से आसाधारण की ओर बढ़ता है। शोषण के सन्दर्भ में कवि एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न खड़ा करता है—

सोचो कपड़े लिपटे कमर पर
और पहने हुए शरीर पर
फल हैं किस व्यक्ति के पसीने के
वाणी की सामर्थ्य
और होना बुद्धिमान
है किस व्यक्ति के कारण।
लिखाया, पढ़ाया
सामाजिक बनाया
मानूं इसे सत्य
नहीं जानते कायदे कानून
हैं अज्ञानी खेतिहर प्राणी
क्या करें इनका शोषण।

(हिजम अङाङ्हल)

स्पष्ट है कि नवजागरणकालीन कवि शोषण करने वालों की आत्मा को उन्हीं के विवेक की नोंक से वींधने का प्रयास करते हैं। वे अपनी ओर से कोई विश्लेषण या निष्कर्ष प्रस्तुत करने के स्थान पर शोषकों को ही प्रेरित करते हैं कि वे स्वयं यह निर्णय करें कि अज्ञानी तथा निरक्षर होने पर भी उस सामान्य जनता का शोषण किस सीमा तक न्यायोचित है, जो अपने श्रम से सामाजिक और वैयक्तिक जीवन को खाद-पानी प्रदान करती है। उनकी लेखनी यहीं विराम नहीं लेती, बल्कि वे समाज और मातृ भूमि की वास्तविक उन्नति के लिए ज्ञान दीप जलाने का आह्वान भी करते हैं—

बन्धु बान्धव सभी
होकर एक
चुकाने हेतु ऋण माँ का
जलाएँ ज्ञान दीप
करें माँ की सेवा

(ख्वाइराकपम चाओबा सिंह)

और जैसे-जैसे नवीन विचारधारा व जागरण का प्रकाश फैलता जाता है, कवियों की प्रसन्नता भी बढ़ती जाती हैं—

कुछ कुछ उज्ज्वल है कहीं कहीं
विज्ञान के प्रज्ज्वलित दीप से
चाहता हूँ देखना पूर्ण रूप से उज्ज्वलता
जग गया नव वर्ष
लमदा की स्वच्छ पूर्णिमा में।

(हवाइबम नवद्वीप चन्द्र)

इसी के बाद वह स्थिति आती है, जिसमें कवि मातृभूमि के गौरव का बखान करते हुए उसे जीवन-दायिनी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। नवजागरण का एक समर्थ पक्ष यह था कि उसमें व्यापक संवाद स्थापित करने और निराश-हताश लोगों को वास्तविकता से अवगत कराने की ललक थी। उस काल में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक थी, जो भीतर ही भीतर मातृभूमि को प्रेम तो करते थे, किन्तु कोई दिशा स्पष्ट न होने के कारण एक विराट शून्य में विचरण करते थे। उनके लिए उनकी अपनी मातृभूमि ही समस्त अभावों से घिरी थी, जो उन्हें कुछ नहीं दे सकती थी। यह उनके चेतनाहीन होने का प्रमाण था। नवजागरणकालीन कवियों ने इसी त्रासद स्थिति को समाप्त करके जन्मभूमि के प्रति नवीन आस्था जगाने का प्रयास किया–

तेजस्वी हे वह कौन, खड़ा हो पराए तट
सन्नद्ध हो रहा स्नान हेतु देखता प्यासी दृष्टि से
है मातृ-भूमि में भी नदी विचारते जिसे सूखी धारा वाली
खोदे एक बार देखो निसृत जल
मिलेगा निर्मल जल स्नान करें यदि उस जल में
मिलेगी शान्ति मन को, तन को, कितना आनन्दित होगा मन।

(लमाबम कमल)

वैचारिक तेजस्विता से भरे इस सम्बोधन की आँच का अनुभव करने के बाद ही नवजागरणकालीन काव्य में चित्रित मातृभूमि के सौन्दर्य को समझा जा सकता है। संस्कृत कवि ने जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़ कर माना था। मणिपुरी भाषा के नव जागरणकालीन कवियों ने इस अभिव्यक्ति ने लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं किया–

दो नहीं है पृथ्वी पर
भूमि है एक मात्र यह
विस्तीर्ण महत्ता इसकी
नहीं गा सकेगा कोई
उदात्त है स्वर्ग से भी
कहते हैं सभी लोग

(चिङ्खाम मयुरध्वज)

यहाँ यह माना जा सकता है कि तत्कालीन कवि ने संस्कृत काव्य का अनुवाद कर डाला है। किन्तु इस आरोप से पहले इस तथ्य पर विचार करना आवश्यक है कि कवि के मन में अपनी मातृभूमि के प्रति जो अगाध श्रद्धा-समुद्र हिलोरें ले रहा था, उसकी अभिव्यक्ति संस्कृत-कवि का सानिध्य उपलब्ध किए बिना संभव नहीं थी। भावोदात्तता के लिए संस्कृत का अनुकरण प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं के कवियों द्वारा कभी न कभी अवश्य किया गया है। नवजागरण कालीन मणिपुरी कवियों द्वारा बंगला के अनुकरण के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं, किन्तु थोड़ा उदार होकर सोचें तो इसे, भाषाओं के पारस्परिक सम्पर्क के सहारे उनके विकास से जोड़ कर भी देखा जा सकता है। उस दशा में पारस्परिक प्रभाव के स्वरूप को समझना व काव्य का मूल्यांकन करना सहज होगा।

आध्यात्मिक, दार्शनिक और रहस्यवादी भावना की व्यापक अभिव्यक्ति नवजागरणकालीन कविता की महत्वपूर्ण विशेषता है। ऐतिहासिक कारणों से मणिपुरी साहित्य का मध्य काल बंगाल के मार्ग से आई वैष्णवी चेतना से अतिशय प्रभावित रहा है।[26] इस कारण उसकी आध्यात्मिक चेतना और दार्शनिकता में उत्तर भारत सहित बंगाल की भावुक आध्यात्मिक स्वर लहरी का प्राधान्य है। इन कवियों ने संसार को मिथ्या माया का घर मान कर ही विविध अभिव्यक्तियों की हैं—

मिथ्या सांसारिक माया

(अराम्बम दरेन्द्रजीत सिंह)

इस मिथ्या माया के मरीचिका जल में ही सारा संसार डूब रहा है, क्योंकि माया ने उसे इस क्षण मात्र में मोहित करके विवेकहीन बना दिया है—

मोहित कर लिया क्षण मात्र में
मिथ्या पवन बाँसरी ने
डूब रहा है दुख में
संसार मृग मूर्खता से

(अशाङ्बम मीनकेतन सिंह)

ऐसे मिथ्यात्व भरे विश्व में मनुष्य का कल्याण किस प्रकार संभव है? इस संसार में समस्त सम्बन्ध मिथ्या भाव से परिचालित हैं। उनके टिके रहने की भित्ति कृत्रिम बोध से निर्मित है। उनमें स्थायित्व का पूर्णतः अभाव है। इसके साथ ही मनुष्य को भय और भ्रम से भरने वाली अविद्या-माया लगातार अपना जाल फैलाती जा रही है। वह विविध प्रकार के प्रलोभनों की हाट लगा रही है। ऐसे मार्गों का व्यूह तैयार कर रही है, जिन पर चलने वाला व्यक्ति बार-बार प्रारम्भ बिन्दु पर लौट आने को अभिशप्त है। ऐसी परिस्थिति में वह अपने को मित्र हीन पाता है। इस प्रतिकूल वातावरण में केवल ईश्वर की वह सत्ता है, जो व्यक्ति का कल्याण कर सकती है; अतः उसी का गुणमान करना अनिवार्य है—

कहाँ है सच्चा मित्र
शक्ति भर खोजा
शक्ति भर सोचा
कोई नहीं ईश्वर के सिवा
बिना भेद किए काल का
विभक्त किए बिना मन को
करो स्मरण स्वामी का

(चिङाखम मयुरध्वज)

इन कवियों ने ईश्वर के लिए 'गुरु' का प्रयोग किया है—

एकाकी पक्षी
छूकर गुरु के आसन का छोर
नाच रहा चक्कर काटते हुए

(ख्वाइराकपम चाओबा सिंह)

और माना है कि वह सर्व व्यापक है। मनुष्य वृक्ष अग्नि और जल में उसी की सत्ता व्याप्त है। संसार उसी के बनाए विधान के अनुसार चलता है। सूर्य की ऊष्णता और चन्द्र की शीतलता उसी के कारण है। पवन उसी के आदेश का पालन करता है। इसी प्रकार पुष्प, पूर्णिमा का चन्द्रमा, तारे, ज्योत्सना, अर्थात प्रकृति का रोम रोम उसी ईश्वर के गुण गाता है। कवि ईशान कोण की देवी से प्रश्न करता है–

लाल वस्त्रों से अलंकृत
हे ईशान कोण की देवी
किसने बनाया तुम्हें ?
ईश्वर के सारे उपासकों को
करा कर मन में स्मरण
जपवाया ईश्वर का नाम

(चिङाखम मयुरध्वज)

तत्कालीन कवियों ने इस प्रकार की अनेक रचनाओं के माध्यम से ईश्वर, प्रकृति, आत्मा आदि के स्वरूप और गुणों का वर्णन किया है। उन्होंने पक्षी को भी ऐसे समर्थ उपदेष्टा प्रतीक के रूप में स्थान दिया है, जो आता है, प्रभु के गुणों का बखान करता है, ईश्वर के महत्व का प्रतिपादन करता है तथा दूसरी सुबह पुनः आने का वादा करके उड़ जाता है–

ईश्वर के साम्राज्य में
प्रत्येक विषय-व्यवहार में
कौन मार्ग दर्शक है तुम्हारा
कल भी अवश्य आऊँगा
आज की तरह उड़ जाऊँगा
सुनाऊँगा गुण प्रभु के

(ख्वाइराकपम चाओबा)

विराट-सत्ता के इस अंकन के पश्चात् कवियों का ध्यान उस मूल बाधा की ओर गया है, जो ईश्वर और जीवात्मा के मध्य दीवार बन कर खड़ी हैं। यह बाधा है–"मैं" का बोध। हिन्दी के विद्रोही कवि संत कबीर ने इसी "मैं" पर कड़े प्रहार किए थे। उन्होंने कहा था कि जब तक व्यक्ति के भीतर "मैं" का बोध विद्यमान है, वह ईश्वर की कृपा का अधिकारी नहीं वन सकता, अतः भक्त के लिए "मैं" को जानना और उसका परित्याग करना अनिवार्य है। कवि मीनकेतन ने भी इसे हटाने का आग्रह किया है–

हटा दे बाड़
"मैं" की बाड़
जो है तेरे मेरे मध्य।

वे एक अन्य बाधा को हटाने का भी आग्रह करते हैं–

हटा दे पर्दा
शून्य अंधकार का
जो है तेरे मेरे मध्य।

अध्यात्म और रहस्यवाद सम्बन्धी नवजागरणकालीन साहित्य की प्रकृति बहुत कुछ हिन्दी और बंगला कवियों से मेल खाती है। कबीर, मीरा, जयशंकर प्रसाद और रवीन्द्र के यहाँ इनके समतुल्य भाव खोजना कठिन नहीं है।

जहाँ तक दर्शन पक्ष का सम्बन्ध है, यह धार्मिक एवं सांस्कृतिक कारणों से गीता के दर्शन-चिन्तन से निकटता रखता है। महाभारत का अनुवाद बहुत पहले से ही मणिपुरी भाषा में किया जाने लगा था। धार्मिक संस्कारों के अवसर पर होने वाले प्रवचनों में गीता की सहायता भी काफी पहले से ली जाने लगी थी। इन दोनों का प्रभाव नवजागरण कालीन साहित्य की दार्शनिक चेतना पर है। कुछ कवियों ने तो ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिन्हें पढ़ते समय गीता के श्लोक स्मृति में उभने लगते हैं—

नाशवान है शरीर, अमर है आत्मा
आसान है नए वस्त्र धारण करना, पुराने छोड़

❑❑❑

कर्म ही है करणीय, नहीं खोजा फल को
तुम सिर्फ हो कर्मी मैं हूँ करने वाला

(राजकुमार शीतलजीत सिंह)

इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ व्यापक रूप से जानी पहचानी हैं, अतः इसका जितना महत्व इनके कृष्ण के उपदेश होने के कारण है, उतना काव्य की दृष्टि से नहीं। कवियों में जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति यदि नवीन माध्यम और विलक्षण शैली के सहारे नहीं की जाती तो उसका प्रभाव घट जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए कवियों ने प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को अपने दार्शनिक चिन्तन की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इससे दर्शन की नीरसता कम हुई है। तथा कवियों को अपनी कल्पना शक्ति के प्रयोग का अवसर भी मिला है। दर्शन को प्रकृति के सहारे सहज रूप में प्रस्तुत करने वाली ऐसी अभिव्यक्तियाँ पाठक का ध्यान बरबस आकृष्ट करती है—

प्रिय पुष्प हे कमल
हम भी तुम्हारी तरह हैं
इस भव सागर में
खिलते हैं बिखरने के लिए

❑❑❑

विधाता ब्रह्मा ने
फैला कर मोह का जाल
पतंगों की भाँति
सृजा है उड़ लेने को कुछ काल।

(ख्वाइराकपम चाओबा सिंह)

नवजागरणकालीन कविता की इस दार्शनिक मुद्रा का एक और पक्ष भी मन पर प्रभाव छोड़ता है। उसका सम्बन्ध समूची आध्यात्मिक और दार्शनिक सत्ता के सामने अपने अस्तित्व

और जीवन की महत्ता प्रतिपादित करने वाले व्यक्ति से है। यह प्रश्न शताब्दियों से उठता रहा है कि सम्पूर्ण जगत और उसके नियन्ता की शक्ति के सम्मुख व्यक्ति की क्या स्थिति है ? जो दार्शनिक व्यक्ति की समूची सत्ता का विलयन विराट् अदृश्य सत्ता में करके सन्तोष कर लेते हैं, वे प्रश्न का सीधा किन्तु ऊपरी समाधान प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति अपने जिस व्यक्तित्व का निर्माण अनथक संघर्ष के माध्यम से करता है, उसे वह अकारण किसी अन्य सत्ता में विलीन करके सन्तुष्ट नहीं हो सकता। उसके लिए अपने जीवन और अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न संसार के समस्त सम्बन्धों और लोकोत्तर सत्ता की समस्त शक्ति से ऊपर है। उसके विषय में वह कोई भी निर्णय स्वयं करना चाहता है और अपने निर्णय के परिणाम का भोक्ता बनना भी उसे स्वीकार हैं यह आधुनिक विचारधारा नवजागरण का एक अंग है। कवियों ने जीवन पर व्यक्ति के अधिकार का प्रश्न उठाते हुए कहा है—

करो मत भय
करके भय पलायन करते हो क्यों
सन्तान नहीं है तुम्हारी सन्तान
तुम्हारी नहीं है, तुम्हारी वह पत्नी
कौन है तात
कौन है माता
ब्रह्मा के लिए भी ईर्ष्या का हेतु यह जन्म
क्या नहीं है तुम्हारा ?

(राजकुमार शीतलजीत सिंह)

व्यक्ति यह जानता है कि अपने जन्म और जीवन पर अधिकार का दावा करके वह एक बड़ी शक्ति को चुनौती दे रहा है। धार्मिक व्यवस्था के स्वामियों का मानना है कि ईश्वर ही हर पग पर व्यक्ति की रक्षा करता है, अतः व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की सिद्धि के लिए उसी पर निर्भर है। यह धारणा व्यक्ति के सामने संकट बन कर खड़ी है, क्योंकि इसके कारण उसकी स्वतन्त्र सत्ता को आघात पहुँचता है। कवियों ने इस संकट को समझा है और उससे जूझे हैं। नवजागरण काल के कवियों ने इसे व्यक्ति के लिए अनिवार्य संघर्ष के रूप में देखा है। उनकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे किसी भी स्तर पर ईश्वर की सत्ता को नकारते नहीं है, किन्तु उसके सामने व्यक्ति को दीन-हीन भिक्षुक का स्तर भी प्रदान नहीं करते। वे व्यक्ति को अपने भीतर व्याप्त आत्म विश्वास के बल पर जीवन के संकटों का सामना करने की प्रेरणा देने वाला दर्शन प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति ईश्वर से शक्ति पाकर अपने संकल्प और आत्मविश्वास के सहारे वाधाओं का सामना करेगा। इस प्रकार वह अकेला ही संघर्ष में विजय पाकर अपने को ईश्वर का योग्य दास प्रमाणित करेगा—

आने दो कष्ट अनेक
दो शक्ति करूँगा सामना
न आना तुम कभी रक्षा हेतु
पुकारें-है योग्य वह दास तुम्हारा

(राजकुमार शीतलजीत सिंह)

नवजागरणकालीन मणिपरी कविता में अपूर्व सौन्दर्य दृष्टि दिखाई देती है। उस काल की अधिकांश कविताएँ सौन्दर्य की अभिनव आभा से प्रकाशित है। उनकी रचना में जिस सृजक कल्पना का सहारा लिया गया है, उसने उन्हें कोमलता के साथ-साथ प्रभविष्णुता भी प्रदान की है। यदि कवियों पर ध्यान दिया जाए तो वे स्वयं भी सौन्दर्य के सच्चे पुजारी से प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपनी इस विशेषता के बल पर लाक्षणिक प्रयोगों की झड़ी लगा दी है और समग्र अभिव्यक्ति को सौन्दर्यमय बना दिया है। प्रकृति के सौन्दर्य का चित्र बनाते समय कवि ने कहा है–

थाङ्ग के बड़े गाँव में, कराङ्ग के फलों के बाग में
लदे हैं सुन्दर सुमधुर फल
सिंघाड़े की पुष्प भरी बेलें
खिली हैं गाँव के चारों ओर
तरु-डालों पर पक्षियों की टोली
कर रही है मधुर गुणगान
मैतै सागर सामने प्रकाशमान
यह हमारा लोकताक

(ख्वाइराकपम चाओब)

यह आश्चर्यचकित कर देने वाला तथ्य है कि इन कवियों ने सौन्दर्यतत्व को भावात्मक संवेगों के सहारे काव्य और कल्पना का विषय बनाया है। इसी क्षमता के कारण उनके यहाँ क्षण-क्षण नवीन सौन्दर्य फूट पड़ता अनुभव होता है। नवजागरणकालीन कवियों के काव्य में सौन्दर्य के साथ कवि का सिद्ध व्यवहार भी दिखाई देता है– अर्थात् वे पहले चरण में वस्तु और प्रकृति में व्याप्त सौन्दर्य को संयम और असम्पृक्ति के साथ मात्र खोजी के रूप में देखते-परखते हुए प्रतीत होते है और दूसरे चरण में उनका व्यक्तित्व सौन्दर्य में डूबता हुआ लगता है। इस कारण तत्कालीन काव्य में सौन्दर्य के भीतर कभी दार्शनिक गाम्भीर्य अनुभव होता है और कभी आवेशमयी निजता। इन दोनों तत्वों के प्रभाव से नवजागरण कालीन काव्य का सौन्दर्य अखण्ड प्रभाव उत्पन्न करता है तथा बहुत महत्व की बात यह है कि वह केवल चाक्षुष होने की सीमा का अतिक्रमण करके अन्तर्जगत् को प्रकट करता है। इन कवियों ने भले ही पाश्चात्य और पौर्वात्य सौन्दर्य-शास्त्र का नियमित अध्ययन न किया हो, किन्तु इनकी कविताओं में सौन्दर्य, बाह्य और आन्तरिक विश्व के मध्य समन्वय करता मिलता है। अङाङ्हल जैसे कवियों ने तो गद्य में भी ऐसे ही प्रयास किए हैं।[27] यह इन कवियों की निजी विशेषता ही कही जाएगी कि उनके पास सौन्दर्य एक सांस्कृतिक-दृष्टि के रूप में है, जिसके कारण वे अपनी रोमानी आदर्श प्रधान प्रवृत्ति के होते हुए भी सामान्य जीवन की सहजता और यथार्थ से विलगाव नहीं रखते। उनके लिए निर्धन श्रमजीवी नारी का जीवन कुछ इस प्रकार का है–

अनेक बहनें
बारिश-घाम से बे-परवाह
नहीं उतारती चावल की टोकरी सिर से
कमर में बांध फेंटा

तज कर लोक लाज
सोचो भाग-दौड़ कर रही हैं किसके लिए !

(हिजम अङाङ्हल)

यहाँ कवि एक विवश नारी का चित्रण भर नहीं कर रहा है, बल्कि वह अपनी विलक्षण कलात्मक क्षमता द्वारा उस पूरी व्यवस्था को प्रश्नों के घेरे में खड़ा कर रहा है, जिसके कारण नारी सिर से चावल की टोकरी नहीं उतार पार ही है। वह स्त्री कमर में फेंटा बंधे हुए हैं और उसके लिए सामाजिक निन्दा या लोक लाज का महत्व नहीं रह गया है, क्योंकि उसके लिए इन सबसे बड़ा प्रश्न अपनी सन्तानों का पालन पोषण करना है। सौन्दर्य दृष्टि और यथार्थ का यह मणिकांचन संयोग किसी भी युग के कवियों के लिए स्पृहा की वस्तु है और इससे उस धारणा का भी खण्डन होता है, जिसके चलते नवजागरण कालीन कवियों को केवल आदर्शवादी का भावुक मानवतावादी मान लिया जाता है। सचमुच इन कवियों को सौन्दर्य का स्रष्टा-कवि कहा जाना चाहिए। तभी यह माना जा सकेगा और समझा जा सकेगा कि उन्होंने सौन्दर्य से जीवन तथा परिवेश के सत्य को प्राप्त किया है। उनके सौन्दर्य सृजक रूप के कारण ही उनकी भाषा, प्रतीक बिम्ब छन्द अर्थात् उनके काव्य का सम्पूर्ण शिल्प एक ऐसे मुहावरे में खुला हुआ है जो पाठक है सहज परिचय और प्रभविष्णु संवाद स्थापित करता है। यह मुहावरा चौंका देने वाली चित्रात्मकता का निर्णय नहीं करता, स्वाभाविक रंगों और रेखाओं के सहारे अपनेपन से भरे हुए चित्र बनाता है, इसीलिए दैनन्दिन जीवन के चित्र भी कलात्मकता से भर जाते हैं—

हो सवार अश्व पर
शाम का सूर्य
जा पहुँचा पश्चिमी पर्वत पर
हल के फल से खूड़ बनाने वाले
कुदाल चलाने वाले बिजली की गति से
छोड़ दिया सभी ने अपना अपना काम
श्रम बिन्दुओं पर स्पर्श से मन्द पवन के
शीतलता छा गई तन मन में

(ख्वाइराकपम चाओबा)

नवजागरणकालीन कवियों की इसी सौन्दर्य सृजक दृष्टि ने भाषा सृजन के सर्वोच्च शिखरों पर इन्द्रधनुषी पताकाएँ फहराई हैं। काव्यशास्त्रियों (भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही) का बहुत बड़ा वर्ग यह मानता है कि कविता, संरचित भाषा का प्रतिफल होती है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कवि नए सिरे से ध्वनियों का संग्रह करके किसी विशेष भाषा का उत्पादन करता है बल्कि इससे अभिप्राय है कवि द्वारा प्रचलित भाषा के बीच से ऐसी भाषा का चयन जो उसकी काव्यात्मक आवश्यकता के सर्वथा अनुकूल हो। यही वस्तुतः कवि के सामने सबसे बड़ी चुनौती होती है और यह उसकी प्रतिभा पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार शब्दों का चयन करेगा और किस प्रकार अपनी अभिव्यक्ति उनमें भरेगा। यह एक प्रकार से उपार्जित भाषा का पुनर्सृजन है, इसीलिए कविता और संरचित भाषा के मध्य बहुत सूक्ष्म सम्बन्ध है। नवजागरणकालीन कवियों ने अपनी सौन्दर्य दृष्टि के विशिष्ट प्रयोग द्वारा कविता की

संरचित-भाषा काव्य साहित्य को प्रदान की है। इसके प्रमाण स्वरूप इन कवियों की काव्य भाषा का जो उदाहरण नीचे दिया जा रहा है, उसका वास्तविक सौन्दर्य तो मूल मणिपुरी पढ़ने पर ही ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु हिन्दी पाठकों के लिए अनुवाद भी बहुत कुछ बता देता है—

बज उठी बाँसुरी सुनो मन
आई बुलाहट खेत की ओर से
लगी बरसने पहली बरसात
क्या कर रहे हो तुम यहाँ

□□□

थामो हल, संभालो हँसिया
चलो तुम करने अपना काम
ठीक समय पर नहीं करोगे
काटोगे कल पुराल ही

(हवाइबम नवद्वीपचन्द्र)

इस उदाहरण के बाद यह व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है कि इन कवियों की सौन्दर्य दृष्टि तथा भाषा के मूल में लोक जीवन में सर्वत्र बिखरी अनुभव सम्पदा का क्या और कितना महत्व है ? कविताएँ स्वयं इस विषय को पर्याप्त स्पष्ट कर देती हैं।

नवजागरणकालीन मणिपुरी कविता के ताने बाने में लोक चेतना का रंग अलग ही दिखाई देता है। उस काल में 'खम्ब-थोइबी शैरेङ' शीर्षक लोक महाकाव्य रचा गया था। उनतालीस हजार पंक्तियों का यह काव्य ग्रन्थ मणिपुर के प्रसिद्ध लोक प्रेमाख्यानक 'खम्ब-थोइबी' पर आधारित है। महाकवि अङाङ्हल ने इसकी रचना 'पेना गायन शैली' में की है और 'पयार' नामक लोक छन्द का प्रयोग किया है। इसकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि कवि ने कथा को आधार बना कर अपने कवित्व के बोझ के नीचे इसे नहीं रचा है, बल्कि उसने चुङखाम मणि नामक लोक-गायक से इसे 'पेना' नामक मणिपुरी लोक वाद्य पर सुन-सुन कर महाकाव्य का रूप दिया है। निरन्तर सुनते जाने और लिखते जाते के क्रम में कवि के पास इतना अवकाश नहीं था कि वह कथा को काव्य तत्वों से तराश तराश कर काव्य का रूप देता—इसीलिए इस काव्य की भाषा काव्य-रचना की सर्वोत्तम लोक-भाषा है। उसके शब्दों में लोक की गंध बसी है। लोक जीवन का रस उसमें पूरी तरह व्याप्त है। वह लोक-संस्कृति के उन्नत सौन्दर्य से मण्डित है। निश्चय ही 'खम्ब-थोइबी शैरेङ्' भारतीय भाषाओं का सर्वोत्तम लोक महाकाव्य है।

नवजागरण काल के अन्य कवियों ने भी खम्ब-थोइबी की गाथा का अपने काव्य की श्रीवृद्धि में पर्याप्त उपयोग किया है। इन कवियों ने इसी गाथा का सहारा लेकर कुछ नवीन प्रतीकों की उदभावना की है—

पि-थादोई पि-थादोइ
थादोइ थादोइ पि-थादोइ
किसके लिए है दीवाना ?

□□□

घोड़े पर सवार हो भागने वाली
इकलौती थादोइ
नहीं दिखेगी फिर आँखों से
खुमन के घर पहुँच गई है
चली गई है प्रियतम के पास
छोड़ दो देखने की आशा।

(ख्वाइराकपम चाओवा)

'खम्बा-थोइबी' लोक-गाथा में खलनायक था—नोङ्बान। उसने साम, दाम, दण्ड, भेद से नायिका थोइबी को पाना चाहा, किन्तु उसे अन्ततः पाया नायक खम्ब ने। कवि-सत्य है कि नोङ्बान मृत्यु के बाद पक्षी बन गया। अब वह जंगल-जंगल पि-थादोई, पि-थादोई कह कर थोइबी को पुकारते हुए उड़ता रहता है। इस पुकार में 'पि' का अर्थ है 'प्रिय' और 'थादोई' नाम है थोइबी का अर्थात् वह पुकारता है, 'प्रिया थोइबी'। कवि ने इस मौलिक प्रतीक कल्पना के साथ ही लोक गाथा की उस प्रचलित घटना का संकेत भी किया है, जिसमें नायिका थोइबी नोङ्बान को धोखा देकर घोड़े पर चढ़ कर खुमन (नायक खम्ब) के पास चली जाती है। यहाँ लोक-चेतना और मौलिक प्रतीक निर्माण के साथ विरह के चित्रण की कलात्मक शैली भी ध्यान आकर्षित करती है।

इन समस्त विशेषतओं के साथ नवजागरण कालीन मणिपुरी कविता में मानवतावाद का स्वर अत्यन्त उज्ज्वल है। कवियों ने व्यक्ति के हृदय के प्रेम को मानवता की कसौटी पर कस कर अद्भुत साहस का परिचय दिया है—

स्वर्ण-हार प्रेम का
उतार कर गले से प्रिय के
पहना सके जो शत्रु को
कहलाता है व्यक्ति वही सच्चा-प्रेमी

यह एक प्रकार से नवजागरण-कालीन मणिपुरी कविता के उदात्त सांस्कृतिक चरित्र का प्रमाण है।

संदर्भ

1—

2—

3—

1- But Manipur was undoubtelly free from any Political bondage during the time of Gambhir Singh and Nar Singh. Government of India was wise enough to allow Manipur to exist as an independent state between the two frontiers of the British and the Burmese.

-Jyotirmoy Raj, History of Manipur, Second edition 1973, p. 77.

2. The British Political Agent was first appointed in Manipur in 1835.

The power and resonsibi lity of the fpolitical. Agent were further increased by the declaration of the Government of India in 1851 und in 1852 and also by the strong personalities of the incumbants like Garden. M. C. Culloch and Johnston. During the period of their agencies there was no important event in Manipur in which they were not either directly or indirectly connected.

3. Finally that Government of India informed Mr. Quinton, the Chief Commissioner of Assam, the Kulachandra Singh might be recognized as the Maharaja of Manipur if he accepted the following conditions-

1. He should allow the Political Agent to keep 300 soldiers in the residency.

2. He should administer to country according the advice of the Political Agent.

3. He should agree to the externment of Tikendrajit form Manipur and help the British Government in this respect.

-Wire of 18th March, 1891

4. Tikendrajit for his defence prayed to the court to allow him to bring a qualified lawyer from Cachar. The court refused to give such permission and advised him to appoint anyone in Manipur as his defence counsel.

-Jyotirmoy Ray, History of Manipur, 2nd Edition, 1975, p. 131

5. I confirm the sentence of death passed by the chief political Officer in the case of the accused. viz. Niranjan Subedar and Mia Singh. Both the accused having in my opinion been clearly convicted of having acted as leaders and instigators of revolt.

The sentence to be carried out infront of the west gate of the fort on Friday, the fifteen day of May 1891.

Manipur **- Henry Collett**

the 12th May 1891 **Major General Commanding**

Manipur Field Force.

-The Battle of Khongjom, N. Khelchandra Singh, edition, 1983.

6- The attack on British troops at Thoubal was clearly an act of rebellion.

- H. Moxwell, Chief Political Officer

-Manipvr, 12th May 1891

7. Gallows ware creeted on the polo Ground and the sentences duly carried out. As far as, eye could see the plain was white with women. In the Raja's days criminal sentenced to death was occasionally reprieved if a sufficient number of women appear to intercads for him and hoping that possibly the old custom might still prevail, the women had assembled in their thousands. As the drop and the Senapati and Tankul General were launched into eternity, a deep groan went up from the assembled throng.

-Manipur District Gazetteer

P. C. Sharma (Keeper of Records, Government of Assam).

Manipur's last struggle of Peserve Her Independence

(Peeps into Manipur, Editor, R. K. Sanahal Singh, p. 137)

8. The conclusion is that the well known saying 'Might is right, was conveniently and openly exercised in the Manipur affair.

-L. Iboongohal Singh, Introduction to Manipur, 2nd Edition, 1963, p. 162

9. It is said, though the authority is not definite, that the Thangal General an old man who with the Senapati was hanged for the Manipur rebellion in 1891, was one of the 34th N. I. Mutineers, who escaped and took service in that state.

-Colonel L. W. Shakesfeare. History of Assam rifles, Chap. V, p. 64

10. Jyotirmoy Ray, History of Manipur, 2nd Edition, 1973, p. 103.

11. The British action in Manipur culminating in the occupation of the state and the execution of Tikendrajeet and Thangal Major ereated a great sensation in Bengal xxx. The stand taken by Senapati and his martyrdom continued to be a source of inspiration to the revolutionaries of Bengal for a long time.

12. Manipur Itihas, Mukund Lal choudhury, p. 207

13- This was the first time in the history of the Manipur state that the Maharajas unquestioned authority has ever been successfully challenged by any body.

-Life story of Irawat singh, People's Age, Vol. IV, No-7, Dec.30. 1945.

14. IRAWAT : SENTINEL OF THE EAST, First edition, 1988, p. 53

15. डॉ0 कमल (1899), एच0 अङाङहल सिंह (1892) और के0. एच0 चाओबा सिंह (1895) जैसे इस काल के प्रतिनिधि कवियों ने मणिपुरी काव्य में देश-भक्ति, प्रेम राष्ट्रीय-चेतना और नव-जागरण की एक नई लहर पैदा कर दी।

–डॉ0 जवाहर सिंह (आधुनिक मणिपुरी कविता : एक दृष्टि), मणिपुर : भाषा और संस्कृति, प्रथम संस्करण–1988, पृ028

16. हिन्दू धर्म से जुड़े धर्म-प्रचारकों के प्रभाव में आए राजा गरीब निवाज के वंशजों के कारण तत्कालीन मणिपुरी समाज में अपनी मातृ भाषा मणिपुरी का कोई स्थान नहीं था, बल्कि उसे अपवित्र माना जाता था। इसके पीछे ब्रह्म-सभा का भी बड़ा हाथ था। फलस्वरूप यह अन्ध-विश्वास प्रचलित हो गया था जो मणिपुरी भाषा में कोई धार्मिक कार्य या संकीर्तन-गायन करेगा यदि वह दिन में करेगा तो कौआ बन जाएगा और यदि रात में करेगा तो उल्लू बन जाएगा।

–लनचेनबा मीतै (नाटककार अङ्गाङ्हल) महिप-पत्रिका वर्ष-7, अंक -67, मई 1993, पृ0-41

17. कुछ वर्षों बाद यह देखने में आया कि मणिपुरेश्वर महाराज चूड़ाचांद सिंह जी के मन

में अचानक मातृ-भाषा प्रेम हिलोरें लेने लगा। एक मणिपुरी के नाते अपने ही घर में अपनी भाषा बोलने का साहस सर्व-प्रथम उन्होंने ही किया। उन्होंने स्व0 लाइरेनलाक्पम इबुङोहल द्वारा रचित नरसिंह नामक मणिपुरी ऐतिहासिक नाटक 30 अप्रैल 1925 को राजमहल में खेलने की व्यवस्था सर्वप्रथम की।

–वही, पृ0 41-42

18. डॉ0 इबोहल सिंह काङ्जम एचं डॉ0 ओ0 इबोचाओबा के साथ हुए व्यक्तिगत विचार-विमर्श के आधार पर।

19. कुछ लोगों की सूचना के अनुसार उन्होंने इस प्रकार की आठ सौ से भी अधिक पाण्डुलिपियों उपलब्ध की हैं।

20. The old manuscripts covered almost all important aspects of human life. They throw tremendous light on every branch of science which has a relevance to human civilization.

- N. Tombi Singh (Manipuri Language), Social change in Manipur (Editor-B. K. Ahluwalia and Sashi Ahluwalia). First Eeition 1994 P-47.

21. शासन-व्यवस्था एवं न्याय-व्यवस्था पर अंग्रेजों का अधिकार होने के कारण राजा का अधिकार सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में ही सिमट गया था।

–डा0 न0 अरूणा (जहेरा : महाकवि अङाङ्हल का सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास), महिप पत्रिका, वर्ष-7, अंक-67, मई 1993, पृ0-31

22. धर्म की लगाम थामने वाले लोगों ने धर्म का व्यापारिक उपयोग ही नहीं किया, बल्कि अपने व्यक्तिगत शत्रुओं को दबाने के लिए इसे हथियार भी बनाया।

–पुस्तक परिचय स्तम्भ, साहित्य (मणिपुरी साहित्य परिषद का प्रकाशन), अंक-6, सित0 1965, पृ0-55

23. गौड़ीय वैष्णव धर्म में पलने वाला मणिपुरी समाज बहिष्कार के स्थान पर शरण देने का कायल नहीं था। यदि कोई जनजातीय कन्या से सम्बन्ध बनाए तो उसे भी जनजातीय बन जाना, यदि मुसलमान लड़की से विवाह करे तो मुसलमान बन जाना, पड़ता था और यदि सगोत्री विवाह करे तो उसे अपनी जीवन संगिनी के साथ कहीं शरण न मिलने के कारण मृत्यु का वरण करना पड़ता था।

–डा0 न0 अरूणा (जहेरा : महाकवि अङाङ्हल का सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास), महिप पत्रिका, वर्ष-7, अंक-67, मई 1993, पृ0-32

24. जहेरा वास्तव में विप्लवी है। समाज की परम्परा के विरोध में खड़ी हो सकने वाली नारी है। इसलिए हमें अङाङ्हल को इस दृष्टि से नहीं देखना चाहिए कि वह जाति भेद के विरुद्ध न खड़ा हो सकने वाला लेखक है।

—डा0 नो0 तोम्बी सिंह (महाकवि अङाङ्हल के उपन्यास जहेरा में वर्णित आदर्श प्रेम का स्वरूप) वहीं, पृ0-66

25. जहेरा (लेखक : हिजम अङाङ्हल), पृ0-156

26. During the reigm of Maharaja Bhagya chandra Sing, Gaudya Vaishnavism become the creed of the Manipuri Hindus. This brought them into intimate contact with the medieval Bengali Literature.

-Jyotirmay Ray (Literature), Social change in Manipur (Editor- B. K. Ahluwalia and Shashi Ahluwalia), First edition 1984, p. 54.

27. वास्तव में अङाङ्हल सौन्दर्य के पुजारी हैं। वे केवल बाह्य सौन्दर्य की खोज नहीं करते, वरन् आभ्यन्तरिक सौन्दर्य की खोज करना उनका प्रमुख लक्ष्य था। उसी के फलस्वरूप वे नारी चरित्रों में आदर्शवादी स्वरूप को परिलक्षित करते हैं।

—डा0 इबोहल सिंह काङ्जम (थमबाल का कथन और चरित्रनिर्माण), महिप पत्रिका, वर्ष 7, अंक-76, मई 1993, पृ0-49.